प्रेम है द्वार प्रभु का

प्रवचन-क्रम

1. भय या प्रेम..2
2. जीवन की कला..19
3. आनंद खोज की सम्यक दिशा...29
4. महायुद्ध या महाक्रांति...34
5. अंतर्यात्रा के सूत्र...43
6. अहंकार..52
7. प्रेम है द्वार प्रभु का...64

प्रेम है द्वार प्रभु का पहला प्रवचन

भय या प्रेम

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य-जाति भय से, चिंता से, दुख और पीड़ा से आक्रांत है, और पांच हजार वर्षों से--आज ही नहीं। जब आज ऐसी बात कही जाती है कि मनुष्यता आज भय से, चिंता से, तनाव से, अशांति से भर गई है तो ऐसा भ्रम पैदा होता है जैसे पहले लोग शांत थे, आनंदित थे।
यह बात शत-प्रतिशत असत्य है कि पहले लोग शांत थे और चिंता-रहित थे। आदमी जैसा आज है वैसा हमेशा था। ढाई हजार वर्ष पहले बुद्ध लोगों को समझा रहे थे, शांत होने के लिए। अगर लोग शांत थे, तो शांति की बात समझानी फिजूल थी? पांच हजार वर्ष पहले उपनिषदों के ऋषि भी लोगों को समझा रहे थे आनंदित होने के लिए; लोगों को समझा रहे थे दुख से मुक्त होने के लिए; लोगों को समझा रहे थे प्रेम करने के लिए। अगर लोग प्रेमपूर्ण थे और शांत थे तो उपनिषद के ऋषि पागल रहे होंगे। किसको समझा रहे थे?
दुनिया में अब तक एक भी ऐसी पुरानी से पुरानी किताब नहीं है जो यह न कहती हो कि आजकल के लोग अशांत हो गए हैं। मैं छह हजार वर्ष पुरानी चीन की एक किताब की भूमिका पढ़ रहा था, उस भूमिका में लिखा है कि आजकल के लोग अशांत है, नास्तिक हैं, बहुत बुरे हो गए हैं, पहले के लोग अच्छे थे। छह हजार साल पहले की किताब कहती है, पहले के लोग अच्छे थे। ये पहले के लोग कब थे? ये पहले के लोगों की बात एक मिथ, एक कल्पना और सपने से ज्यादा नहीं है। आदमी हमेशा से अशांत रहा है। और इसलिए अगर हम यह समझ लें कि आज अशांत है, आज भय से आक्रांत है, आज चिंतित और दुखी है, तो हम जो भी निदान खोजेंगे, जो भी मार्ग खोजेंगे, वह गलत होगा। क्योंकि मार्ग खोजना है--।
आज तक की पूरी मनुष्यता किन्हीं अर्थों में गलत रही है, भ्रांत रही है। आज का आदमी ही नहीं, आज तक की पूरी मनुष्यता ही कुछ गलत रही है। और उसने अपनी गलती को सुधारने के लिए जो कुछ भी किया है उससे गलती मिटी नहीं, उससे और बढ़ती चली गई।
मनुष्य हमेशा से भयभीत है। और भय, फियर के आधार पर ही उसका सारा जीवन खड़ा हुआ है। जब वह मंदिरों में प्रार्थना करता है तब भी भय के कारण। उसने जो भगवान गढ़ रखे हैं वे भी भय से ही उत्पन्न हुए हैं। जब वह राजधानियों में पदों की यात्रा करता है, बड़े पदों पर पहुंचना चाहता है, तब भी भय के ही कारण। क्योंकि जितने बड़े पद पर कोई होता है उतनी सत्ता और शक्ति उसके हाथ में होती है, उतना भय कम मालूम होगा। इस आशा में आदमी दौड़ता है, दौड़ता है। चंगीज और तैमूर और नेपोलियन और सिकंदर और हिटलर और स्टैलिन सभी भयभीत लोग हैं। सभी घबड़ाए हुए लोग हैं। सभी डरे हुए लोग हैं। उस भय से बचने के लिए बड़ी ताकत हाथ में हो, इसकी चेष्टा में लगे हुए हैं। धन की जो खोज कर रहा है वह भी भयभीत आदमी है। धन से एक सुरक्षा, एक सिक्युरिटी मिल सकेगी, इस आशा में वह धन को इकट्ठा करता चला जा रहा है।
मंदिरों में प्रार्थना करने वाला, राजधानियों की यात्रा करने वाला,
धन की तिजोरियों को इक्ट्ठा कर लेना वाला, ये सभी के सभी भय के आधार पर ही जी रहे हैं। वे जिन्हें आप संन्यासी समझते हैं, जिन्हें आप समझते हैं कि ये परमात्मा के मार्ग पर चले गए लोग हैं, शायद आपको पता न हो कि वे भी किसी आंतरिक भय के कारण ही उस यात्रा में संलग्न हो गए हैं।
जीसस क्राइस्ट एक गांव से निकलते थे। उन्होंने गांव की एक सड़क पर कोई पंद्रह बीस लोगों को रोते हुए, छाती पीटते हुए, उदास बैठे हुए देखा। उन्होंने पूछा तुम्हें यह क्या हो गया है? किसने तुम्हारी यह हालत की है? उन पंद्रह बीस लोगों ने चेहरे ऊपर उठाए। उनके मुरझाए हुए चेहरे--जैसे मौत उनके सामने खड़ी हो। उन्होंने कहा: नरक की बात सुन कर हम इतने भयभीत हो गए हैं। नरक की बात सुन कर हम भयभीत हो गए हैं।
इस दुनिया में जितने धार्मिक लोग दिखाई पड़ते हैं इनमें कोई भी मुश्किल से धार्मिक होगा। इनमें से सौ में से निन्यानबे लोग नरक के भय के

कारण परेशान हैं या स्वर्ग का प्रलोभन, दोनों एक ही बातें हैं। लोभ और भय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भयभीत आदमी लोभी होता है क्योंकि सोचता है इतना मिल जाए, इतना मिल जाए--धन मिल जाए, पद मिल जाए, भगवान मिल जाए, स्वर्ग मिल जाए, तो मैं दुख से बच जाऊं, चिंता से बच जाऊं, पीड़ा से बच जाऊं।
मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि हमने आज तक जो भी किया है उसके केंद्र में भय है। हमारे राष्ट्र, हमारी देश-भक्ति, हमारी राजनीति, हमारी फौजें, सब हमारे भय पर खड़ी हुई हैं। हमारे देश, हमारी कौमें सब भय पर खड़ी हुई हैं। आकाश में लहराते हुए हमारे झंडे, सब भय पर खड़े हुए हैं। हम सब एक-दूसरे से भयभीत हैं। जिस दिन दुनिया में भय नहीं होगा उस दिन दुनिया में कोई जातियां नहीं रह जाएंगी, कोई देश नहीं रह जाएगा। उस दिन दुनिया में राजनीति का उतना ही मूल्य होगा जितना और सारी संस्थाओं का होता है। राजनीति इतनी मूल्यवान नहीं रह जाएगी। राजनीतिज्ञ की इतनी प्रतिष्ठा नहीं रह जाएगी। राजनीतिज्ञ की प्रतिष्ठा फियर के कारण है, भय के कारण है। एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है, अगर किसी को किसी कौम की बागडोर अपने हाथ में लेनी हो तो पहला काम यह है कि उस कौम को भयभीत कर दो। उसे घबड़ा दो। चीन का खतरा है। पाकिस्तान का खतरा है। ऐसा कोई भय पैदा कर दो। वह भयभीत हो जाए तो फिर अपनी बागडोर आपके हाथ में दे देगी। सारी दुनिया की नेतागिरी, सारी लीडरशिप मनुष्य को भयभीत करने के ऊपर आधारित है। सारी गुरुडम--यह हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों के पोप, पादरी, शंकराचार्य--यह सारी गुरुडम भय पर आधारित है। आदमी को भयभीत कर दो फिर वह पैर पकड़ लेगा और चरण पकड़ लेगा और कहेगा, मुझे मार्ग बताओ, मुझे बचाओ।
आज तक मनुष्य के जीवन को भय के केंद्र पर ही खड़ा रखा गया है। और दुनिया
का कोई शोषण चाहे वह शोषक राजनीति का हो, चाहे वह शोषण धर्मनीति का हो, चाहे वह शोषण धन का हो, चाहे वह शोषण शरीर का हो और चाहे मन का हो, दुनिया का कोई शोषक नहीं चाहता कि आदमी भय से मुक्त हो जाए। क्योंकि जिस दिन भय नहीं उस दिन शोषण की संभावना भी समाप्त हो जाती है। आज तक मनुष्य-जाति को अभय करने का कोई उपाय नहीं किया गया, उसे फियरलेसनेस में खड़े करने के लिए कोई चेष्टा नहीं की गई है। लेकिन हम कहेंगे कि नहीं, चेष्टाएं तो की गई हैं, निर्भय लोग पैदा किए गए हैं। हम फौज में सैनिकों को निर्भय बनाते हैं। हम उन्हें हिम्मतवर बनाते हैं, शहीद हुए हैं, सिपाही हुए हैं, सैनिक हुए हैं, बड़े-बड़े बहादुर लोग हुए हैं। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि निर्भयता में और अभय में बुनियादी फर्क है। फियरलेसनेस में और भय की स्थिति में भी जान को लगा देने में बुनियादी फर्क है।
एक सैनिक अभय को उपलब्ध नहीं होता है, सिर्फ उसकी बुद्धि को जड़ किया जाता है। उसे स्टुपिडिटी सिखाई जाती है। उसकी संवेदना कम की जाती है ताकि उसे भय का बोध न हो। इडियट्स भयभीत नहीं होते। जड़बुद्धि लोग भयभीत नहीं होते। भय का अनुभव न हो इसके लिए बुद्धि की क्षमता को कम किया जाता है। इसलिए सैनिक को हम वर्षों तक लेफ्ट-राइट; आगे घूमो, पीछे घूमो, बाएं घूमो, दाएं घूमो, इस तरह की व्यर्थ अर्थहीन क्रियाओं में संलग्न रखते हैं। इन क्रियाओं का एक ही मूल्य है कि निरंतर पुनरुक्ति से मनुष्य की बुद्धि क्षीण होती है। उसकी संवेदना क्षीण होती है। उसकी सेंसिटिविटी कम होती है। अगर एक आदमी को तीन वर्ष तक सुबह चार घंटे, सांझ चार घंटे बाएं घूमो, दाएं घूमो, बाएं घूमो, दाएं घूमो करवाया जाए, तो उसकी बुद्धि की चिंतन की अनुभव करने की क्षमता क्षीण होती है। वह स्टुपिड होता है। और तब उसे बदूंक के सामने भी खड़ा कर दिया जाए तो उसे ख्याल नहीं आता है कि कोई खतरा है।
वह अभय को उपलब्ध नहीं हो गया है सिर्फ भय को अनुभव करने की तीव्रता
और क्षमता उसकी क्षीण हो गई है।
पुनरुक्ति के द्वारा, रिपिटिशन के द्वारा मनुष्य की चेतना को डल, शिथिल करने की कोशिश की जाती है। कोई भी चीज बार-बार पुनरुक्त की जाए तो मनुष्य की चेतना क्षीण होती है। एक मां को अपने बेटे को सुलाना होता है तो रात को कहती है कि राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, वह समझती है गीत गा रही है, लोरी गा रही है। बेटा उसका सो जाता है तो शायद वह सोचती है कि बहुत मधुर आवाज के कारण सो गया है। बेटा सिर्फ बोर्डम की वजह

से सो गया है। ऊब पैदा हो जाती है, अगर कोई पास बैठ कर कहे चला जाए--राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा। पुनरुक्ति की जा रही है, रिपीट की जा रही है एक ही बात, तो चित्त ऊबता है, बोर्डम पैदा होती है। ऊब से उदासी पैदा होती है। उदासी से नींद पैदा होती है। चेतना शिथिल हो जाती है और सो जाती है। लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट। राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा या राम-राम, हरे-हरे, इन सारी बातों की पुनरुक्ति से मनुष्य का भय कम नहीं होता, केवल बुद्धि कम होती है।
एक आदमी भयभीत होता है अंधेरी गली में, तो कहने लगता है, जय राम, जय राम, जय राम। एक आदमी ठंडे पानी में स्नान करता है, तो कहने लगता है, हर-हर महादेव, हर-हर महादेव। जहां भी भय मालूम होता है वहां आदमी शब्दों की पुनरुक्ति करने लगता है। शब्दों की पुनरुक्ति से अनुभव की क्षमता क्षीण होती है। सैनिक और संन्यासी, भक्त और लड़ाके अभय को उपलब्ध नहीं होते, केवल बुद्धिहीनता को उपलब्ध होते हैं।
मनुष्य-जाति अब तक दो तरह के काम करती रही है। एक तो भय को पैदा करती रही है, ताकि शोषण किया जा सके और फिर जब भय पैदा हो जाता है तो उस भय से बचाने के लिए जड़ता पैदा करती रही है ताकि आदमी भय में कहीं मर ही न जाए। यह पांच हजार वर्ष की मनुष्य की आंतरिक शिक्षा की कथा है। और आज हम जो इतने भयभीत मालूम हो रहे हैं, हर आदमी कंप रहा है अपने भीतर।
जितना सभ्य देश है उतना ही ज्यादा भयभीत मनुष्य है। प्राण कंप रहे हैं, सोते जागते कोई चैन नहीं है। एकदम भय पकड़े हुए है। यह पांच हजार वर्षों की शिक्षा की क्लाइमेक्स है। यह कोई इस युग की भूल नहीं है। यह जो चल रहा है हजारों वर्षों से उसका अंतिम परिणाम है। भयभीत, भयकातर, कंपे हुए।
पति पत्नी से भयभीत है। पत्नी पति से भयभीत है। बेटे बाप से भयभीत है। बाप बेटों से भयभीत है। पड़ोसी पड़ोसी से भयभीत है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से भयभीत है। हिंदू मुसलमान से भयभीत है। सब सबसे भयभीत हैं। ये इतने भय से कंपा हुआ जगत अगर रोज-रोज युद्धों में से गुजर जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है। जो भयभीत है वह अंततः युद्ध में जाएगा। भय युद्ध में ले जाने का मार्ग है। क्योंकि भय जब बढ़ता जाएगा तो हम क्या करेंगे? हम तैयारी करेंगे अपनी रक्षा की। पड़ोसी भी तैयारी करेगा अपनी रक्षा की। एक-दूसरे की तैयारी देख कर फिर एक विसियस-सर्कल पैदा होगा और हम तैयारी करते चले जाएंगे।
एक फकीर, एक मुल्ला नसरुद्दीन नाम का फकीर एक रात एक रास्ते से गुजरता था। अंधेरा रास्ता था, और उस तरफ से एक बारात आती थी। घोड़ों पर सवार लोग थे, बंदूकें दागते हुए लोग थे। फकीर नसरुद्दीन ने समझा कि कोई डाकू आ रहे हैं। अंधेरे में डाकू किसी को भी दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। उजाले में भी दिखाई पड़ते हैं, लेकिन आदमी जरा बल पकड़े रहता है। उजाले में यह है कि ठीक-ठीक दिखाई पड़ता है। और लोग भी देख रहे हैं। अंधेरे में डाकू आ रहे हैं। नसरुद्दीन ने कहा, कैसे बचूं, क्या करूं, अकेला हूं? बंदूकें लिए मालूम होते हैं, घोड़ों पर सवार हैं। पास में ही एक कब्रिस्तान था। दीवाल से छलांग लगा कर वह एक नई खोदी गई कब्र में लेट कर सो गया, ताकि वे निकल जाएं। लेकिन वही नहीं डरा था बारात के लोगों को देख कर, बारात के लोग भी रात अंधेरे रास्ते पर अकेले एक आदमी को दीवाल पर चढ़ते देख कर डर गए। पता नहीं कौन है? कोई हत्यारा है? बारात रुक गई दीवाल के पास। उन्होंने अपनी लालटेनें और बत्तियां ऊपर उठाईं। दीवाल पर सारी बारात चढ़ गई उस आदमी की खोज में। नसरुद्दीन के तो प्राण सूख गए। उसने देखा, निश्चित ही डाकू हैं, मेरे पीछे ही चले आ रहे हैं। दीवाल पर चढ़ गए हैं। उसने आंखें बंद कर लीं। और जब उन्होंने उस आदमी को कब्र मैं जिंदा आंख बंद किए लेटे देखा, तो वे और हैरान हो गए। उन्होंने अपनी बंदूकें भर लीं। वे नीचे आए और उससे कहा कि बोलो, तुम कौन हो? यहां किसलिए आए हो? क्या कर रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा: मेरे दोस्तो, यही मैं तुमसे पूछना चाहता हूं कि आप यहां क्या कर रहे हैं और किसलिए आए हैं? उन लोगों ने कहा: हम किसलिए आए हैं? हम तुम्हारी वजह से यहां आए हैं। नसरुद्दीन उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि मैं क्या कहूं, यू

आर हियर बिकॉज ऑफ मी एण्ड आई एम हियर बिकॉज ऑफ यू। आप मेरी वजह से यहां हैं और मैं आपकी वजह से यहां हूं।
सारी दुनिया भयभीत है। और अगर पूछने जाइए, किससे भयभीत हैं, तो आप पाएंगे कि मैं आपके कारण भयभीत हूं और आप मेरे कारण भयभीत हैं। रूस अमरीका के कारण भयभीत है, अमरीका रूस के कारण भयभीत है। पति पत्नी के कारण भयभीत है, पत्नी पति के कारण भयभीत है। और सच्चाई यह है कि हमारे चित्त का केंद्र भय बन गया है। हम शायद किसी के कारण भयभीत नहीं हैं, हम सिर्फ भयभीत हैं-- अकारण। और अपने भय को हम रेशनेलाइज करते हैं कि हम इसके कारण भयभीत हैं। मैं उसके कारण भयभीत हूं, मैं इस बात से भयभीत हूं, मैं मौत के कारण भयभीत हूं, मैं बीमारियों के कारण भयभीत हूं, मैं इस बात से, उस बात से... ।
हम सिर्फ भयभीत हैं। हमारी आत्मा ही भय से भर गई है। क्यों भर गई है? क्या रास्ता है? भजन-कीर्तन करें, मंदिरों में जाएं, पूजा-प्रार्थना करें? बहुत हो चुके भजन-कीर्तन। बहुत हो चुकी पूजा-प्रार्थनाएं। आज तक मनुष्यता भय से दूर नहीं हुई। जो चीज भय से ही पैदा होती है उससे भय दूर नहीं हो सकता। वह भजन-कीर्तन, वह पूजा-पाठ भय से ही पैदा हो रहा है। बंदूकें बनाए, एटम बम बनाए, हाड्रोजन बम बनाए, उससे भय दूर होगा? उससे भय दूर नहीं हुआ। भय बढ़ता चला गया। बम भय से ही पैदा हुए हैं। इसलिए बमों के कारण भय दूर नहीं हो सकता है। बंदूकों के कारण भय दूर नहीं हो सकता, क्योंकि बंदूक भय के कारण ही पैदा हुई है।
वह आपने घरों में तस्वीरें देखी होंगी, बहादुर लोगों की, तलवारें हाथों में लिए हुए। जो भी आदमी हाथ में तलवार लिए हुए है वह बहादुर नहीं है। वह भयभीत है। चाहे बंबई की सड़कों पर मूर्तियां बनी हों, चाहे घरों में फोटो लटकी हों। जिस आदमी के हाथ में तलवार है वह आदमी भयभीत है, वह बहादुर नहीं हो सकता। हाथ में तलवार सबूत भय का है, फियर का है। इतनी बात है कि भयभीत आदमी अपने से कमजोर आदमी को भयभीत करने की कोशिश करता है। इस भांति उसे यह विश्वास आ जाता है कि मैं भयभीत नहीं हूं, दूसरा भयभीत है।
इसलिए दुनिया में हर आदमी कोशिश करता है कि दूसरे को भयभीत कर दे। किसलिए? इसलिए ताकि वह यह विश्वास कर ले कि तुम कंप रहे हो, मैं नहीं कंप रहा हूं। तुम भयभीत हो, मैं भयभीत नहीं हूं। वह अपने भय को भुलाने के कंसोलेशंस खोजता है, ताकि दूसरा आदमी भयभीत हो। इसलिए पति मालिक बन कर पत्नी को भयभीत किए रहता है। पति खुद भयभीत है। वह पत्नी को जब डरा लेता है, रुला लेता है, पत्नी को जब पैरों में गिरा लेता है तब वह आश्वस्त होता है कि मैं भयभीत नहीं हूं, मैं बहादुर आदमी हूं। यह औरत भयभीत है। दफ्तर में वह जाता है, उसका बॉस उसको कंपा देता है और थर्रा देता है, उसी हालत में पहुंचा देता है जिस हालत में उसने अपनी पत्नी को पहुंचा दिया था। उसका मालिक सोचता है कि मैं भयभीत नहीं हूं, मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं। सौ आदमी मेरे नीचे काम करते हैं, ये भयभीत हैं।
और सीढ़ी दर सीढ़ी हर आदमी दूसरे को भयभीत करके कुछ और नहीं कर रहा है, इतना ही कर रहा है कि अपने लिए विश्वास पैदा कर रहा है, सेल्फ-कांफिडेंस जुटा रहा है, आत्म-विश्वास जुटा रहा है।
ये हिटलर और स्टैलिन बड़े भयभीत लोग हैं। ये सारी दुनिया को कंपा देते हैं। ये विश्वास लाना चाहते हैं कि तुम सब कांप रहे हो, मैं नहीं कांप रहा हूं। लेकिन हिटलर रात को अपना दरवाजा बंद करके सोता है। वह रात भर चौंकता रहता है कि कहीं कोई आ तो नहीं गया। स्टैलिन अपनी पत्नी के साथ भी उसी कमरे में रात नहीं सोता है। स्टैलिन बड़ी-बड़ी सभाओं में स्वयं नहीं जाता। अपनी शक्ल-सूरत का आदमी रख छोड़ा है, डबल रख छोड़ा है, वह जाता है सभाओं में। मिलिटरी की परेड की सलामी स्टैलिन खुद नहीं लेता है, दूसरा आदमी लेता है जो उसकी शक्ल-सूरत का है, क्योंकि खतरा है कोई गोली न मार दे।
नादिर जिस नगर में गया, दस हजार बच्चों के सिर कटवा लेता, भालों में छिदवा देता और फिर जुलूस निकलता उसका, उसकी शोभायात्रा निकलती, वह पीछे घोड़े पर सवार है। हजारों बच्चों के सिर छिदे हुए हैं भालों में। लोग उससे पूछते कि नादिर तुम यह क्या कर रहे हो? तो वह कहता, ताकि लोग याद रखें कि नादिर इस नगर में आया था। लेकिन सच्चाई यह थी कि नादिर रात भर नहीं सो सकता

था। जरा सी खटखटाहट हो कि वह तलवार निकाल कर खड़ा हो जाता था, क्या है? कौन है? और नादिर की मौत इसी तरह हुई। एक घोड़ा छूट गया उसके कैंप का रात को भूल से और नादिर के तंबू के पास से निकल गया। घोड़े की आवाज सुन कर नादिर उठा। उसने समझा कि कोई दुश्मन आ गया घोड़े पर सवार होकर। अंधेरे में बाहर निकल कर भागने की कोशिश की, पैर में रस्सी फंस गई तंबू की और वह गिर पड़ा और मर गया। यह आदमी राजधानियां कत्ल करता रहा, मकानों में आग लगवाता रहा। किसलिए?
ये दुनिया भर के राजनीतिज्ञ क्या चाहते हैं? ये सब भयभीत लोग हैं। ये दूसरे को भयभीत करके यह विश्वास जुटा लेना चाहते हैं कि नहीं-नहीं कौन कहता हूं, मैं भयभीत नहीं हूं, भयभीत सारी दुनिया होगी। ये सिंहासनों की यात्रा करने वाले सारे फियर कांप्लेक्स से परेशान और पीड़ित लोग हैं। दुनिया के बड़े नेता, दुनिया के बड़े सेनापति, दुनिया के बड़े विजेता, ये सारे लोग भय से पीड़ित लोग हैं। और इन्हीं भयभीत लोगों के हाथ में दुनिया है, और वे सब एक-दूसरे से भयभीत हैं, इसलिए रोज युद्ध पैदा हो जाता है।
जब तक भय है तब तक दुनिया से युद्ध समाप्त नहीं हो सकता। यह तो हो सकता
है कि युद्ध के कारण भय समाप्त हो जाएं, क्योंकि आदमी ही समाप्त हो जाए, लेकिन यह नहीं हो सकता कि भय जब तक है तब तक युद्ध समाप्त हो जाएं। अब तो हम उस जगह पहुंच गए हैं कि हमारे भय ने अंतिम उपाय ईजाद कर लिए हैं, जब कि हम पूरी मनुष्यता को समाप्त करने में समर्थ हो गए हैं। समर्थ पूरी तरह हो गए हैं, शायद जरूरत से ज्यादा हो गए हैं। मैं सुनता हूं कि वैज्ञानिकों ने इतना इंतजाम कर रखा है कि अगर एक-एक आदमी को सात-सात बार मारना पड़े, तो हमने व्यवस्था कर ली है, सरप्लस किंलिग की व्यवस्था कर ली है। हो सकता है भूल-चूक हो जाए। कोई आदमी एक दफा मारने में बच जाए तो दुबारा मार सकें। दुबारा भी बच जाए तो तीसरी बार मार सकें। सात-सात बार, हालांकि एक आदमी एक ही बार में मर जाता है, दुबारा मारने की कभी कोई जरूरत आज तक नहीं पड़ी। लेकिन भूल-चूक न हो जाए इसलिए इंतजाम पूरा कर लेना उचित है।
तीन साढ़े तीन अरब आदमी हैं। पच्चीस अरब आदमियों को मारने की सारी दुनिया में व्यवस्था है। अब की बार हम आदमी को बचने नहीं देंगे, क्योंकि अब की बार भय चरम स्थिति में हमारे प्राणों को आंदोलित कर रहा है। क्या करें इस भय के लिए? क्या उपाय खोजें?
एक बात आपसे कहना चाहता हूं, इसके पहले कि भय के संबंध में हम क्या करें, उस बात को समझ लेना जरूरी है। अगर इस भवन में अंधकार भरा हो और हम किसी से पूछने जाएं कि अंधकार को निकालने के लिए हम क्या करें? और वह हमसे कहे कि धक्के दे-दे कर हम अंधकार को बाहर निकाल दें और हम सब लौट आएं और अंधकार को धक्के देकर निकालने की कोशिश करें, तो क्या परिणाम होगा? अंधकार निकल सकेगा? या कि अंधकार को निकालने की कोशिश में हम खुद ही समाप्त होने के करीब पहुंच जाएंगे। भय के साथ भी यही हुआ है।
भय को निकालने की हम पांच हजार साल से कोशिश कर रहे हैं। भय को निकालने के लिए हम भगवान को जप रहे हैं। स्वर्ग, नरक, मोक्ष की कल्पना कर रहे हैं। भय को निकालने के लिए हम बंदूकें, बम, अणु-अस्त्र तैयार कर रहे हैं। भय से बचने के लिए हम किले की मजबूत दीवाल उठा रहे हैं। धन की दीवाल उठा रहे हैं। पद-प्रतिष्ठा के किले खड़े कर रहे हैं। लेकिन बिना यह पूछे कि क्या भय को निकाला जा सकता है सीधा? मेरी दृष्टि में भय अंधकार की तरह नकारात्मक है। अंधकार को सीधा नहीं निकाला जा सकता। हां, प्रकाश जला लिया जाए तो अंधकार जरूर निकल जाता है। लेकिन अंधकार को कभी कोई नहीं निकाल सकता। अंधकार वस्तुतः कुछ नहीं है केवल प्रकाश की अनुपस्थिति है, एब्सेंस है, प्रकाश का न होना है। प्रकाश के आते ही अंधकार नहीं पाया जाता है। कहना गलत है कि निकल जाता है, क्योंकि निकलने को कुछ भी नहीं है। कोई चीज निकल कर बाहर नहीं चली जाती है। जब आप दीया जलाते हैं, कुछ बाहर नहीं जाता, कुछ मिटता नहीं। अंधकार अनुपस्थिति थी, एब्सेंस थी प्रकाश की, प्रकाश आ गया, अनुपस्थिति समाप्त हो गई।
शायद आपने सुना हो, एक बहुत पुरानी घटना है, भगवान के पास अंधकार ने जाकर एक बार शिकायत कर दी थी और कहा था कि यह सूरज तुम्हारा मेरे पीछे बहुत

बुरी तरह पड़ा हुआ है। मैं बहुत परेशान हो गया हूं। सुबह से मेरा पीछा करता है। सांझ तक मुझे थका डालता है। दौड़, दौड़ो, बचो, बचो। जहां जाता हूं वहीं हाजिर है। फिर जब मैं बहुत थक जाता हूं तब रात थोड़ी देर सो पाता हूं, सुबह से फिर मौजूद हो जाता है। रात भर विश्राम भी नहीं हो पाता है कि सूरज फिर तैयार है। यह करोडों वर्षों से चल रहा है। मेरा क्या कसूर है? मैंने सूरज का क्या बिगाड़ा है? भगवान ने कहा: यह तो बड़ा अन्याय चल रहा है। मैं सूरज को बुला कर पूछ लूं। उसने सूरज को बुलाया और कहा कि तुम अंधकार के पीछे क्यों पड़े हो? क्यों उसे परेशान किए जा रहे हो? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? सूरज ने कहा: अंधकार? यह नाम मैंने कभी सुना नहीं! यह व्यक्ति मैंने कभी देखा नहीं। अब तक मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई। मैं क्यों पीछे पडूंगा? जिससे मेरी पहचान भी नहीं, उससे मेरी शत्रुता कैसे होगी? आप अंधकार को मेरे सामने बुला दें तो मैं पहचान भी लूं और क्षमा भी मांग लूं।
इस बात को हुए करोड़ों वर्ष हो गए, वह मुकदमा फाइल में ही पड़ा हुआ है।
अब तक भगवान सूरज के सामने अंधकार को नहीं ला सके। ला भी नहीं सकेंगे, क्योंकि सूरज का, सूरज का अस्तित्व है। प्रकाश पाजिटिव, विधायक है। अंधकार नकारात्मक, निगेटिव है। सूरज के सामने अंधकार नहीं लाया जा सकता, क्योंकि अंधकार सूरज की अनुपस्थिति है, गैर-मौजूदगी है। अब जहां सूरज मौजूद है वहां उसकी ही गैर-मौजूदगी कैसे लाई जा सकती है? मैं यहां मौजूद हूं, तो मेरी गैर-मौजूदगी मेरे साथ ही यहां कैसे मौजूद हो सकती है? या तो मैं हो सकता हूं या मेरा न होना हो सकता है। यहां दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती हैं।
लेकिन मनुष्य के भय के संबंध में यही भूल चलती रही है। हम भय को दूर करने की कोशिश करते हैं। भय निगेटिव क्वालिटी है, भय का कोई अस्तित्व नहीं है। भय किसी चीज की अनुपस्थित है, किसी चीज की एब्सेंस है, किसी पाजिटिव क्वालिटी का अभाव है, किसी विधायक गुण का अभाव है।
शायद आपको ख्याल में भी न हो कि भय प्रेम का अभाव है। जिस हृदय में प्रेम नहीं है वह हृदय भयभीत रहेगा ही। आमतौर से इसका ख्याल नहीं आता, क्योंकि हम भय के साथ घृणा को सोचते हैं। घृणा भय का विरोध है। घृणा प्रेम का विरोध है। भय प्रेम का अभाव है, दोनों को एकसाथ। जिस हृदय में प्रेम नहीं वह भयभीत होगा। और अगर अपने जीवन में कभी भी थोड़ा सा प्रेम अनुभव किया हो तो जो क्षण प्रेम का है वही क्षण अभय का भी है। जिसके प्रति आपको प्रेम है उसके प्रति आपका भय समाप्त हो जाता है।
एक नवयुवक का विवाह हुआ था। वह अपनी नई-नई विवाहिता पत्नी को लेकर जहाज की यात्रा पर निकला है। पुराना जहाज है, पुराने दिनों की बात है। तूफान आ गया है और जहाज कंपने लगा है, अब डूबा, तब डूबा होने लगा है। लेकिन वह युवक मौज से बैठा हुआ है। उसकी पत्नी घबड़ा गई है, कांप रही है और उससे कहने लगी है कि तुम इतने शांत बैठे हो और जहाज डूबने को है। मौत करीब मालूम होती है। तुम इतने निश्चिंत मालूम होते हो? वह युवक हंस रहा है। उसने अपनी म्यान से तलवार बाहर निकाल ली और उस युवती के कंधे पर रख दी है, गले पर, अपनी पत्नी के, पर वह पत्नी हंस रही है। वह युवक कहने लगा: मेरे हाथ में तलवार है, तुम्हारी गर्दन पर नंगी तलवार रखे हूं, फिर भी तुम हंस रही हो? उस पत्नी ने कहा: मुझे तुमसे प्रेम है तो तुम्हारी तलवार से भय नहीं मालूम होता है। उस युवक ने कहा: मुझे परमात्मा से प्रेम है इसलिए उसके तूफान से भय नहीं मालूम होता है।
जहां प्रेम है वहां भय की कोई संभावना नहीं। अगर हम भय को निकालने की कोशिश करेंगे, तो हम ज्यादा से ज्यादा जड़ता को उपलब्ध हो सकते हैं, अभय को नहीं। अगर हम प्रेम को जन्माने की कोशिश करें, तो भय प्रेम के जन्म के साथ ही वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे प्रकाश के जन्म के साथ अंधेरा नष्ट हो जाता है।
लेकिन मनुष्य-जाति को प्रेम की कोई शिक्षा नहीं दी गई है। शिक्षा भय
की दी गई है। इसीलिए तो हर आदमी थोथा-थोथा मालूम होता है। क्योंकि व्यक्तित्व का केंद्र अगर निगेटिव है, तो आदमी का पूरा व्यक्तित्व इंपोटेंट होगा। व्यक्तित्व का केंद्र अगर नकारात्मक है, तो व्यक्तित्व

में बल नहीं हो सकता, थोथा, पोचा, इंपोटेंट होगा। इसलिए सारी मनुष्य-जाति नपुंसक हो गई है। कोई बल नहीं है। कोई जीवंत प्रेरणा नहीं है। कोई भाव भरा हुआ, कोई आनंद से भरा हुआ हृदय नहीं है। कोई प्रेम से भरी हुई आंखें नहीं हैं। सब भयभीत, भयकातर, घबड़ाए हुए, ट्रेंब्लिंग, डरे हुए हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व के केंद्र पर पांच हजार वर्षों से भय को रखा गया है। नकारात्मक है भय, इसलिए व्यक्तित्व नकारात्मक हो गया है। एक ही गुण है पाजिटिव, वह है प्रेम और एक ही गुण है नकारात्मक, और वह है फियर, भय। और दो ही महत्वपूर्ण बातें हैं जीवन में--या भय या प्रेम।
जहां भय है वहां अपने आप घृणा पैदा हो जाएगी। जिससे हम भयभीत होते हैं उससे हम कभी भी प्रेम नहीं कर सकते हैं। इसीलिए तो परमात्मा की इतनी शिक्षा दी गई दुनिया में, लेकिन परमात्मा का प्रेम नहीं पैदा हो सका, क्योंकि परमात्मा से भयभीत किए गए आदमी को समझाया गया गॉड-फियरिंग होने के लिए, ईश्वर से भयभीत होने के लिए। दुनिया के धर्म यही समझाते रहे हैं कि ईश्वर से डरो। जिससे डरा जाता है उससे कभी प्रेम नहीं किया जा सकता है। यह मनुष्य-जाति जो नास्तिक हो गई है वह गॉड-फियरिंग की शिक्षा से ही गई है, नास्तिकों के कारण नहीं हो गई है मनुष्य-जाति नास्तिक। अगर दुनिया में अब भी कोई आस्तिक पैदा हो जाते हैं तो नास्तिकों के बीच से, लेकिन आस्तिकों के बीच से कभी कोई आस्तिक पैदा नहीं होता। आस्तिकों के बीच से आस्तिक पैदा हो ही नहीं सकता। क्योंकि आस्तिक है ईश्वर से डरा हुआ, और जहां डर है वहां प्रेम असंभव है। जहां भय है वहां प्रेम असंभव है। जिससे हम भयभीत होते हैं उससे हम घृणा करते हैं। गहरे में घृणा करते हैं, ऊपर से हाथ जोड़ सकते हैं, लेकिन भीतर मन होता है गला घोट दें।
धर्म-गुरुओं ने ईश्वर का गला घुटवा दिया। उन्होंने सिखाया कि ईश्वर
से डरो। आदमी इतना डर गया कि उसने कहा कि जिससे डरते हैं इसकी हत्या ही कर दो। ह्युमिनिटी किल्ड गॉड। फिर आदमी ने कहा, अब इसका फैसला ही कर दो जिससे इतना भय खाना पड़ता है। इसलिए नीत्शे कह सका: गॉड इ.ज डेड। इसलिए नीत्शे कह सका कि ईश्वर मर गया है। पूछा किसने किसी ने मार डाला है ईश्वर को? नीत्शे ने कहा: आदमी के हाथ देखो, ईश्वर के खून से रंगे हुए हैं। आदमी ने गर्दन दबा दी उसकी जिससे इतना भयभीत होना पड़ता था।
ईश्वर के प्रति भय पैदा करके धर्म नष्ट हो गया, क्योंकि भय कोई विधायक रचनात्मक क्रिएटिव फोर्स नहीं है। भय डिस्ट्रक्टिव फोर्स है, निगेटिव फोर्स है, विध्वंस की ताकत है वह। और हम सब तरह के भय पैदा करते रहे हैं। बाप बेटे में भय पैदा करता है ऑथेरिटी का, मैं बाप हूं, और उसे पता नहीं कि वह बेटे को तैयार कर रहा है कि बाप की हत्या कर दे। और बेटे मिल कर बाप की हत्या कर रहे हैं सारी दुनिया में। यह हत्या जारी रहेगी जब तक बाप बेटे को भयभीत करता है। जब तक वह कहता है कि मैं जो कहता हूं वह ठीक है क्योंकि मेरे हाथ में ताकत है। मैं तुझे घर के बाहर कर दूं, मैं तेरी गर्दन दबा दूं। जब तक पत्नी कहेगी पति से कि मेरे हाथ में ताकत है, जब तक पति कहेगा पत्नी से कि मेरे हाथ में ताकत है जब तक हम परिवार में एक दूसरे को भयभीत करने की कोशिश करेंगे, तब तक अच्छे मनुष्य का जन्म नहीं हो सकता है।
और हम सब एक-दूसरे को डरा रहे हैं, हम सब एक-दूसरे को डरा रहे हैं। हमारी सारी रिलेशनशिप फियर की रिलेशनशिप है। हमारा सारा संबंध भय का संबंध है। विद्यार्थी गुरु के चरण छूता है भय के कारण और गुरु चरण छुवाता है ताकत के कारण--बाप, पति, पत्नी, सारे संबंध हमारे! हम भयभीत कर रहे हैं किसी को, हम डरा रहे हैं किसी को, हम घबड़ा रहे हैं किसी को, और वह घबड़ाहट में पैर छू रहा है और हम प्रसन्न हो रहे हैं। और हमें पता नहीं कि हम सिर्फ अपने प्रति घृणा पैदा कर रहे हैं। इस घृणा का बदला लिया जाएगा। बेटे बड़े हो जाते हैं, बाप बूढ़ा हो जाता है, ताकत की स्थिति बदल जाती है, बेटों के हाथ में ताकत आ जाती है, बाप कमजोर हो जाता है, पासा पलट जाता है, बदला शुरू हो जाता है, और बेटे बाप को सताना शुरू कर देते हैं। यह प्रतिक्रिया है, यह रिएक्शन है। बाप ने बेटे को बचपन में सताया है, अब पासा पलट गया है। तब बाप ताकतवर था, तब वह छोटे से बच्चे को डरा सकता था, वह डंडा उठा सकता था, द्वार बंद कर सकता था, घर के बाहर निकाल सकता था। वह जो भयभीत किया था बेटे को, वह

भय के कीटाणु भीतर रह गए हैं, वे बदला मांगते हैं। क्योंकि भय विध्वंसात्मक है, वह बदला चाहता है। भय से घृणा पैदा होती है, विरोध पैदा होता है, विद्रोह पैदा होता है। बच्चा प्रतीक्षा करेगा ताकत आ जाए हाथ में, कल जवान हो जाएगा, ताकत हाथ में हो जाएगी, बाप बूढ़ा हो जाएगा, कमजोर हो जाएगा, फिर सताने की प्रक्रिया उलट जाएगी, बेटा बाप को सताएगा।
हम सब एक-दूसरे को भयभीत कर रहे हैं। हमारा सारा व्यक्तित्व भय पर खड़ा
हो गया है। हम ईश्वर को भी समझाते हैं, हम धर्म को भी समझाते हैं। हम किसी को यह भी कहते हैं कि सत्य बोलो, तो साथ में यह भी कहते हैं कि सत्य नहीं बोलोगे तो नरक जाओगे। हत्या कर दी सत्य की। सत्य के साथ भय जोड़ा जा सकता है? सत्य के साथ भय का कोई संबंध हो सकता है? सत्य पाजिटिव क्वालिटी है, भय निगेटिव क्वालिटी है। सत्य का प्रेम से संबंध हो सकता है, भय से संबंध नहीं हो सकता। नीति का प्रेम से संबंध हो सकता है, भय से संबंध नहीं हो सकता।
लेकिन पांच हजार वर्षों से निगेटिव क्वालिटीज को पाजिटिव क्वालिटीज
के साथ जोड़ा जा रहा है, इसलिए मनुष्यता नष्ट हो रही है। यह भोजन के साथ जहर डाला जा रहा है। एक बूंद जहर पूरे भोजन को नष्ट कर देती है। एक बूंद नकारात्मक गुण पूरे विधायक गुण को नष्ट कर देता है। बच्चे से हम कह रहे हैं कि सत्य बोलो, नहीं तो मारेंगे। हम सोच ही नहीं रहे हैं कि हम कौन सी दो चीजें जोड़ रहे हैं। हम कह रहे हैं कि नीति का आचरण करो नहीं तो नरक जाना पड़ेगा। वहां कड़ाहे हैं, आग जलती है, तेल उबलता है और उसमें डाले जाओगे। भगवान को भी बड़ा मजा आता होगा इन कामों में मालूम होता है। बेचारे गरीब आदमी को, कमजोर आदमी को कड़ाहों में डाल कर बहुत मजा आता होगा।
एक पादरी एक चर्च में समझा रहा था। भयभीत कर रहा था लोगों को। लोग कांप रहे थे, औरतें बेहोश होकर गिर पड़ी थीं। आपको पता होगा, क्रिश्चिएंस के दो संप्रदायों का नाम ही पड़ गया, क्वेकर्स। क्वेकर्स का मतलब है: कंपने वाले लोग। और एक संप्रदाय था, शेकर्स, वे भी कंपने वाले लोग। पादरियों ने इतना कंपा दिया कि लोग बिल्कुल कंपने लगे। एक संप्रदाय ही क्वेकर्स का खड़ा हो गया। वह पादरी कंपा रहा था, लोगों को डरा रहा था। और जितने लोग डरते जा रहे थे उतनी उसकी कविता नरक के चित्रण में गहरी होती चली जा रही थी। लोग कंप रहे थे तो बहुत मजा आ रहा था। किसी को कंपाने से ज्यादा मजा और किसी चीज में नहीं है।
खलील जिब्रान कहता था कि मैं एक खेत के पास से निकलता, एक झूठा आदमी खेत में खड़ा हुआ था, जैसा किसान बना कर खड़े कर देते हैं: एक हंडी बांध देते हैं, एक कुर्ता लटका देते हैं। एक झूठा आदमी खेत में खड़ा हुआ था। वर्षा आए, धूप आए, सर्दी आए, लेकिन झूठा आदमी खेत में शान से खड़ा रहता था। जिब्रान ने कहा, मैंने उस झूठे आदमी से पूछा: दोस्त बहुत थक जाते होंगे, बड़े ऊब जाते होंगे अकेले में खड़े-खड़े। बर्षा आती है, धूप आती है, तुम यहीं खड़े रहते हो, इसी तरह तने खड़े रहते हो। उसने कहा: बिल्कुल नहीं घबड़ाता हूं, बिल्कुल ऊब नहीं आती है, पशु-पक्षियों को डराने में इतना मजा आता है जिसका कोई हिसाब नहीं। जिब्रान ने कहा: यह तो तुम बात बड़ी ठीक कहते हो। आदमियों को डराने में तो मुझको भी मजा आता है। वह झूठा आदमी हंसने लगा और उसने कहा, तब तुम भी एक झूठे आदमी हो।
जिसको दूसरे को डराने में मजा आता है, वह झूठा आदमी है, वह सूडो ह्यूमन बीइंग है। क्योंकि उसके व्यक्तित्व का केंद्र नकारात्मक है, भय है। वास्तविक मनुष्य वास्तविक केंद्र पर पैदा होता है, वह केंद्र प्रेम है। तो मैं जिस पादरी की बात कर रहा था, वह कंपा रहा है लोगों को। वे घबड़ा रहे हैं। और तभी उसने कहा, मालूम है तुम्हें, नरक में क्या होगा? इतनी सर्दी पड़ेगी कि दांत किटकिटाएंगे। एक आदमी खड़ा हो गया, उसने कहा, क्षमा करें, मेरे दांत टूट गए हैं, मेरा क्या होगा? पादरी को बहुत गुस्सा आया, जैसा धर्मगुरुओं को गुस्सा आता है गलत-सही प्रश्न पूछने पर। एक क्षण तो वह रुक गया, गुस्से में फिर उसने कहा कि ऐसे फिजूल के प्रश्न पूछते हो? फॉल्स टीथ विल बी प्रोवाइडिड। झूठे दांत दे दिए जाएंगे उसके पहले, उनको लगा लेना और फिर कांपना। लेकिन कांपना जरूर पड़ेगा। इतनी सर्दी पड़ती है नरक में।

आदमी को, आदमी को हमने सब श्रेष्ठ चीजों के साथ भय को जोड़ दिया। यह पांच हजार वर्ष की सारी मनुष्य-जाति की शिक्षा व्यर्थ हो गई है, अनर्थ हो गई है। यह जो नकारात्मक भय है, इस केंद्र से मनुष्य को हटा लेने की जरूरत है। अगर एक ऐसी दुनिया चाहिए हो जहां लोगों के जीवन में सौंदर्य हो, संगीत हो, आनंद हो, व्यत्तित्व हो, गरिमा हो व्यक्तित्व की, एक बिखरती हुई किरणें हों जीवन की, एक स्वतंत्रता हो, एक-एक व्यक्ति का अपना अनूठापन हो, जहां संबंध हों प्रेम के, जहां युद्ध न हो, जहां शांति हो, तो मनुष्य के व्यक्तित्व के केंद्र को बदल देना जरूरी है। भय की जगह प्रेम। जीवन की समस्त शिक्षाओं से भय को अलग कर देना जरूरी है, एक-एक इंच से। लेकिन वह अलग नहीं होगा। जैसा मैंने कहा, अंधेरे को अलग नहीं किया जा सकता है। तब क्या किया जा सकता है? दीये को जलाया जा सकता है। प्रेम को जलाया जा सकता है। प्रेम को प्रकट किया जा सकता है।
और आदमी के भीतर प्रेम इतना छिपा है जिसका कोई हिसाब नहीं। यह दुनिया छोटी है। अगर एक आदमी के भीतर का प्रेम पूरा बहना शुरू हो जाए, तो यह जगत छोटा है। जैसे हमें कल तक पता नहीं था कि एक अणु में कितनी ऊर्जा हो सकती है। एक छोटे से अणु में कितनी शक्ति हो सकती है कि एक अणु का विस्फोट अनंत शक्ति को जन्म दे-दे। कल तक हमें पता नहीं था कि एक रेत के छोटे से कण से एक बड़ा महानगर नष्ट हो सकता है, कि हाइड्रोजन के एक छोटे से कण से बंबई की महानगरी इसी क्षण राख हो सकती है। कभी हमें पता नहीं था कि पानी की एक बूंद के एक छोटे से कण में इतनी ताकत हो सकती है।
आदमी के भीतर कितनी ताकत हो सकती है प्रेम के कण में, इसका भी हमें कोई पता नहीं। कभी-कभी थोड़ी झलक मिली है, कभी किसी बुद्ध में, कभी किसी क्राइस्ट में, कभी किसी सुकरात में छोटी सी झलक मिली है। लेकिन उस झलक को देखते ही हम एकदम टूट पड़ते हैं और उसे बुझा देते हैं। सुकरात दिखाई पड़ा कि हमने मारा। जीसस दिखाई पड़े कि सूली पर लटकाया। गांधी दिखाई पड़ा कि गोली मारो। हम इतने जोर से टूटते हैं इस झलक पर। क्यों? क्योंकि वह झलक हम सबका अपमान बन जाती है। बहुत इंस्लटिंग है वह झलक। क्योंकि वह झलक यह खबर देती है कि हम सबके घर अंधेरे में पड़े हैं और इस घर में दीया जल गया। बुझा दो इस दीये को! बजाय इसके कि अपना दीया जलाएं, इसको बुझा दो! हम निश्चिंत हो जाएं, एट इ.ज हो जाएं कि सब जगह अंधेरा है। ठीक है हम भी अंधेरे में हैं। आज तक दुनिया में जब भी प्रेम की झलक किसी आदमी में आई है, तो हमने उसे बुझाने की कोशिश की है, ताकि हम निश्चिंत हो जाएं, ताकि हमारा सेल्फ-कंडेमनेशन न हो, आत्मग्लानि पैदा न हो, गिल्ट पैदा न हो कि मैं कैसा आदमी हूं। जब बुद्ध हो सकता है, जब महावीर हो सकता है, जब क्राइस्ट हो सकता है, जब मंसूर हो सकता है, तो मेरे भीतर क्यों नहीं हो सकती यह घटना? एक-एक आदमी के भीतर वही छिपा है जो सब आदमियों के भीतर छिपा है। आदमियत का बीज एक सा ही बीज है। आम के एक बीज से आम का वृक्ष पैदा होता है। आम के दूसरे बीज से भी आम का वृक्ष पैदा होता है। आम के तीसरे बीज से भी आम का वृक्ष पैदा होता है। आदमियत के पास भी एक ही बीज है। जिससे एक ही वृक्ष पैदा हो सकता है। लेकिन हम उसे पैदा नहीं होने देते। कोई वृक्ष हो जाता है तो काट डालते हैं, ताकि हमको यह ग्लानि न आए कि हम कुछ गलत हैं।
प्रेम की बड़ी संभावना मनुष्य के भीतर है, लेकिन न उसकी शिक्षा है, न उसे जगाने का उपाय है, न उसे प्रकट होने देने की सुविधा है, बल्कि हम सब शत्रु हैं प्रेम के। हमने सब जगह ऐसी व्यवस्था कर ली है कि प्रेम कहीं पैदा न हो सके। हमने ऐसी चालाकियां की हैं कि प्रेम के लिए, हमने कोई मार्ग नहीं छोड़ा है। कहीं कोई मार्ग नहीं छोड़ा है। मनुष्य में प्रेम भर पैदा न हो सके और सब पैदा हो जाए। और आश्चर्य और मजे की बात तो यह है कि प्रेम पैदा न हो तो जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह कुछ भी पैदा नहीं होता।
जैसा कि मैंने कहा, जहां भय है, वहां घृणा पैदा होगी। जहां भय है, वहां ईर्ष्या पैदा होगी। जहां भय है, वहां हिंसा पैदा होगी। जहां भय है, वहां क्रोध पैदा होगा। जहां भय है, वहां पूरा नरक पैदा होगा। क्योंकि भय के ये सब अनुषांगिक अंग हैं। ये सब भय की संतति हैं। ये सब भय के पुत्र हैं। जहां प्रेम है वहां आनंद पैदा होगा, वहां शांति पैदा होगी, वहां करुणा पैदा

होगी, वहां दया पैदा होगी, वहां सौंदर्य पैदा होगा, वहां स्वर्ग के द्वार खुलेंगे, क्योंकि प्रेम की संतति हैं ये सब। भय के केंद्र पर जो व्यक्ति है वहां वह सब पैदा होगा। भय के केंद्र का अंतिम परिणाम विक्षिप्तता है, मैडनेस है। और प्रेम के अंतिम केंद्र का परिणाम विमुक्ति है, विमुक्तता है, मोक्ष है।
प्रेम कैसे जन्में? प्रेम की बंद दीवालें कैसे टूटें? कोई राजनीतिज्ञ, दुनिया का कोई नेता विश्वशांति नहीं ला सकता है, क्योंकि राजनीति के सारे केंद्र भय के हैं। कोई धर्मगुरु दुनिया में शांति नहीं ला सकता है, क्योंकि तथाकथित धर्मगुरु का केंद्र ही भय है, जिसके आधार पर वह गुरु बना हुआ है और शोषण कर रहा है।
दुनिया में तो एक ही रास्ते से शांति आ सकती है, मनुष्य के व्यक्तित्व में और समस्त जीवन में, और वह रास्ता है: प्रेम का कैसे जन्म हो। कैसे प्रेम का जन्म हो? प्रेम क्या है? वह कैसे पैदा हो? वह सबके भीतर पड़ा हुआ बीज है, लेकिन बीज बीज ही रह जाता है, वह कभी अंकुरित नहीं हो पाता, उसे भूमि नहीं मिल पाती, उसे पानी नहीं मिल पाता, उसे सूरज की रोशनी नहीं मिल पाती। वह बीज बीज ही रह जाता है। और जो बीज बीज ही रह जाता है उसके भीतर एक कसक, एक दर्द, एक पीड़ा रह जाती है कि मैं जो हो सकता था वह नहीं हो पाया, नहीं हो पाया, नहीं हो पाया। एक फ्रस्ट्रेशन, एक विफलता उसके आस-पास छाई रह जाती है। मनुष्य में जो चिंता दिखाई पड़ती है वह प्रेम के बीज के प्रकट न होने की चिंता है, वह फ्रस्ट्रेशन है। मनुष्य में जो उदासी दिखाई पड़ती है वह उसके भीतर जो होने की संभावना थी, जो पोटेंशियली, वह होने को पैदा हुआ था, जो उसकी डेस्टिनी थी, जो उसकी नियति थी, जो उसे हो जाना चाहिए था। जब एक गुलाब के फूल पर, गुलाब के पौधे पर फूल खिलते हैं, जब एक चमेली खिल जाती है अपने फूलों में और अपनी सुगंध लुटा देती है, तो हवाओं में नाचते हुए उसके पत्तों को देखा है? हवाओं में नाचते हुए उस पौधे को देखा है जिसके फूल खिल गए हैं पूरे? उससे ज्यादा मौज में, उससे ज्यादा आनंद में कोई कभी दिखाई पड़ा है? लेकिन जिस पौधे पर फूल नहीं आ पाते हैं या जिसकी कलियां कलियां ही रह जाती हैं और कुम्हला जाती हैं, उसकी उदासी देखी है? उसकी चिंता देखी है? उसके लटके हुए, मुरझाए हुए पत्ते देखे हैं?
आदमी के भीतर भी जो फूल खिलने को हैं, अगर न खिल पाएं, तो वह भी उदास हो जाता है, चिंतित हो जाता है, लटक जाते हैं उसके पत्ते भी, उसका व्यक्तित्व भी मुरझा जाता है। ऐसे ही सारी मनुष्यता का व्यक्तित्व मुरझा गया है। क्या कभी आपने अपने से पूछा है कि मेरी सबसे गहरी प्यास क्या है--धन, पद, मोक्ष, परमात्मा? नहीं। अगर आप अपने से गहरे से गहरे में पूछेंगे, तो प्राण एक ही उत्तर देते हैं: प्रेम दे सकूं और पा सकूं। एक ही उत्तर है प्राणों के पास कि प्रेम मुझसे बह सके और मुझ तक आ सके। एक ऐसा जीवन जहां प्रेम की वीणा अपने पूरे संगीत को प्रकट कर सके, एक ऐसा जीवन जहां प्रेम का पूरा फूल खिल सके। एक-एक मनुष्य के केंद्र पर प्रेम के अतिरिक्त कोई पुकार नहीं है, कोई आह्वान नहीं है। और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जिस दिन यह प्रेम का फूल पूरा खिलता है उसी दिन परमात्मा भी उपलब्ध हो जाता है। प्रेम परमात्मा का द्वार है। लेकिन प्रेम का कोई ख्याल नहीं, कोई स्मरण नहीं। क्या करें? यह प्रेम कैसे फैले, कैसे विकसित हो, इसकी बंद दीवालें कहां से तोड़ी जाएं, यह झरना कहां से फोड़ा जाए कि यह खिल जाए? कुछ करना बहुत अपरिहार्य हो गया है, बहुत जरूरी हो गया है। अगर हम नहीं करते हैं, तो शायद प्रेम के अभाव में पूरी मनुष्यता नष्ट भी हो सकती है। कैसे? तो दो-तीन छोटे से सूत्र आपसे कहना चाहता हूं, जिससे यह प्रेम की सरिता बह उठे। पहली बात, जिस व्यक्ति के जीवन में प्रेम के फूल को खिलाना हो उसे प्रेम मांगने का ख्याल छोड़ देना चाहिए। उसे प्रेम देने का ख्याल स्पष्ट कर लेना चाहिए। पहला सूत्र, जो लोग प्रेम मांगते हैं, उनके भीतर प्रेम का बीज कभी अंकुर नहीं हो पाएगा। जो लोग प्रेम देते हैं उनके भीतर प्रेम का बीज अंकुरित हो सकता है। क्योंकि अंकुरित होने के लिए दान चाहिए। एक बीज जब अंकुरित होता है तो क्या करता है? पत्ते निकलते हैं, शाखाएं निकलती हैं, फूल खिलता है, सुगंध बिखर जाती है, सब बंट जाता है। बंट जाना है तो

भीतर का बीज खुलेगा। जो मांगता है वह सिकुड़ जाता है। भिखमंगे से ज्यादा सिकुड़ा हुआ हृदय किसी का भी नहीं होता है। जो मांगता है वह सिकुड़ता जाता है, क्लोजिंग होती जाती है। उसके भीतर कोई चीज बंद होती चली जाती है। रवींद्रनाथ एक गीत लिखे हैं। एक गीत लिखे हैं, एक भिखारी सुबह ही सुबह
घर के बाहर आया है। कोई पवित्र दिन है और आज बड़ा खुश है कि गांव में बहुत भीख मिल जाएगी। झोली टांग कर जल्दी ही गीत गुनगुनाता घर के बाहर हुआ है। झोली में उसने थोड़े से चावल के दाने डाल लिए हैं। सभी भिखारी इतना मनोविज्ञान तो समझते हैं, इतनी साइकोलॉजी समझते हैं कि झोली खाली हो तो कोई देने को राजी नहीं होता। थोड़ा झोली में पहले से कुछ पड़ा रहना चाहिए, क्योंकि झोली में कुछ पड़ा हो तो देने वाले को अपमानजनक लगता है कि किसी और ने दे दिया है मैं कैसे नाहीं करूं। फिर देने वाले को यह भी लगता है कि भिखारी साधारण नहीं है, प्रतिष्ठित है, उसे मिलता है। कुछ डाल कर दाने चावल के निकल पड़ा है भिखारी घर के बाहर। आज कोई पवित्र दिन है और गांव में कुछ मिलने की आशा है। रास्ते पर आया है कि दंग रह गया, आशा से भी ज्यादा आशा प्रकट हो गई है। राजा का रथ आ रहा है। सूरज की किरणों से उसका स्वर्ण-रथ चमकता है। भिखारी तो आनंद से नाच उठा। आज तक राजा के दर्शन नहीं हो सके थे। द्वार तक जाता था द्वारपाल ही लौटा देते थे। आज राजा ही राह पर मिल गया। आज झोली फैला कर खड़ा हो जाऊंगा। आज तो धन्य हो गए भाग्य, अब तो पीढ़ियों तक मांगने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। वह ऐसे सपने देखने लगा और खड़ा है।
रथ आकर रुक गया, इतना हतप्रभ हो गया है, चौंक कर रह गया है। राजा नीचे उतर आया और राजा ने अपनी झोली भिखारी के सामने फैला दी। राजा ने कहा: क्षमा करना, किसी ज्योतिषी ने कहा है कि राज्य पर बड़े संकट हैं, और अगर मैं भीख मांग लूं आज तो राज्य के संकट टल सकते हैं, तो मैं भीख मांगने निकला हूं। और उसने कहा कि जो पहला आदमी मिल जाए उसके सामने झोली फैला कर दीन-हीन हो जाना तो राष्ट्र बच सकता है। तो मुझे कुछ भीख दे दो, राष्ट्र का सवाल है।
भिखारी के तो प्राण कितने सिकुड़ गए होंगे कुछ पता है। सोचा था उसने, राजा सामने आ गया, मांग लूंगा आज। जीवन-जीवन धन्य हो जाएंगे, हमेशा के लिए मुक्त हो जाऊंगा। वह तो गया ही, वे सपने तो गिर गए, वे जो महल बनाए सपने के, राख हो गए, और उलटा देना पड़ेगा। उसने कभी सोचा ही नहीं था कि देना कैसा होता है। हमेशा पाया था। हमेशा मांगा था। हमेशा लिया था। देना? आज उसे पहली दफा पता चला कि दूसरों पर क्या गुजरती होगी जब उनके सामने झोली फैलाता हूंगा?
हाथ डालता है झोली में और वापस निकाल लेता है। मुट्ठी बांधने का मन नहीं होता। एक मुट्ठी चावल कम हो जाएंगे अपने घर के। आज पछताया, आज झोली खाली ही लेकर आता तो अच्छा था। लेकिन भूल हो गई, लौटने का कोई उपाय नहीं, और राजा सामने खड़ा है। और राजा कहने लगा कि क्या इनकार करोगे? क्या मना कर दोगे? राष्ट्र संकट में है। एक दाना भी दे दो, एक मुट्ठी ना सही?
लेकिन एक दाना भी भिखारी देने में घबड़ाने लगा। लेकिन मजबूरी थी, एक दाना निकाल कर राजा की झोली में डाल दिया। राजा रथ पर बैठ गया, धूल उड़ती रह गई।
भिखारी चिंतित और दुखी दिन भर भीख मांगी। लेकिन मन बड़ा उदास हुआ, एक दाना जो देना पड़ा था, वह बार-बार याद आने लगा। बहुत दाने मिले दिन में, लेकिन भिखारियों की आदत यही होती है; जो मिलता है उसका ख्याल नहीं आता, जो छूट जाता है उसका ख्याल आता है।
हम सबकी भी यही आदत है। बड़े जगत में हम सब भिखारी हैं, जो नहीं मिल पाता उसकी पीड़ा बनी रह जाती है, जो मिलता है उसके लिए कोई धन्यवाद नहीं होता।
दिन भर रोता रहा मन ही मन में कि एक दाना कम है आज झोली में। तिजोरी में जो होता है वह नहीं दिखाई पड़ता। तिजोरी जहां खाली होती है वही जगह दिखाई पड़ती है। तो उस भिखारी पर नाराज मत हो जाना। साधारण आदमी था, जैसे आदमी होते हैं, जैसे हम सब हैं।

उदास लौटा है सांझ। पवित्र था दिन, दिन भर में इतना मिला है कि आज जैसा कभी नहीं मिला था। सारी झोली भर गई है, लेकिन उदास थका-मांदा घर आ गया है। पत्नी देख कर हैरान हो गई कि झोली पूरी भरी है और तुम इतने उदास? उसने कहा: झोली और भी भरी हो सकती थी। पागल, तूझे कुछ पता नहीं, आज बड़ी मुश्किल हो गई। आज मुझको भी भीख देनी पड़ी है। उदास, उसने झोली उलटाई और उदासी छाती पीटने में बदल गई। फिर वह छाती पीट कर रोने लगा। क्योंकि झोली जब नीचे गिरी तो उसने देखा कि एक दाना सोने का हो गया है। सब दाने तो साधारण दाने थे, मिट्टी के, लेकिन एक दाना सोने का हो गया है। तब वह छाती पीट कर रोने लगा कि मैंने सब दाने क्यों न दे दिए उस राजा को? लेकिन अब बहुत देर हो गई थी, अब देने का कोई उपाय न था।
आदमी भी जिंदगी के अंत में पाता है कि जो उसने दिया था सोने का हो गया
और जो मांगा था वह मिट्टी का भार हो गया। जो देते हैं हम उससे भीतर कुछ स्वर्ण का होता चला जाता है। जो हम मांगते हैं सब मिट्टी होता चला जाता है।
भयभीत आदमी मांगता है। भयभीत भिखमंगा होता है। भय ही अकेला भिखारीपन है, क्योंकि भय कहता है कि जो है उसे मत छोड़ो। जो मिल जाए उसे ले लो। भय भिखारी बनाता है। प्रेम सम्राट बना देता है। लेकिन सम्राट बनने की दिशा देना है, मांगना नहीं। प्रेम का पहला सूत्र है कि वह प्रेम जन्म नहीं पा सकेगा जब तक हम मांगते हैं। हम सब एक-दूसरे से मांगते हैं, मांगते हैं, मांगते हैं। मां बेटे से कहती है कि तु मुझे प्रेम नहीं करता। बेटा सोचता है मां मुझे प्रेम नहीं करती। पत्नी कहती है पति मुझे प्रेम नहीं करता। चौबीस घंटे एक ही शिकायत है पत्नी की कि तुम मुझे प्रेम नहीं करते और पति की भी वही शिकायत है कि मैं थका-मांदा घर आता हूं मुझे कोई प्रेम नहीं मिलता। दोनों मांग रहे हैं, दोनों भिखारी, एक-दूसरे के सामने झोली फैलाए खड़े हैं। और यह सोचते नहीं कि दूसरी तरफ भी मांगने वाला खड़ा है और इस तरफ भी मांगने वाला खड़ा है। जीवन में कलह और द्वंद्व और युद्ध नहीं होगा तो क्या होगा? जहां सभी भिखारी हैं वहां जीवन बरबाद नहीं होगा तो और क्या होगा?
प्रेम के जन्म का पहला सूत्र है: प्रेम दान है, भिक्षा नहीं। इसलिए जीवन में देने की तरफ दृष्टि जगनी चाहिए। यह मत कहें कि पति मुझे प्रेम नहीं देता; अगर पति प्रेम नहीं देता, इसका एक ही मतलब है कि आप प्रेम नहीं दे रही हैं। यह मत कहें पति कि पत्नी मुझे प्रेम नहीं देती; इसका एक ही मतलब है कि पति प्रेम नहीं दे रहा है। क्योंकि जहां प्रेम दिया जाता है वहां तो अनंत गुना होकर वापस लौटता है। एक-एक दाना सोने का होकर वापस लौटता है। वह तो शाश्वत जीवन का नियम है कि जो दिया जाता है वह अनंत गुणा होकर वापस लौटता है। गाली दी जाती है, तो गालियां अनंत गुनी होकर वापस लौट आती हैं और प्रेम दिया जाता है तो प्रेम अनंत गुना होकर वापस लौट आता है। जीवन एक ईको-पॉइंट से ज्यादा नहीं है। जहां हम जो ध्वनि करते हैं, वह वापस गुंज कर हम पर वापस आ जाती है। और हर व्यक्ति एक ईको-पॉइंट है। उसके पास जो हम करते हैं, वही वापस लौट आता है। वही दुगुना, अनंत गुना होकर वापस लौट आता है। प्रेम मिलता है उन्हें, जो देते हैं। प्रेम उन्हें कभी भी नहीं मिलता है जो मांगते हैं। जब मांगने से प्रेम नहीं मिलता तो और मांग बढ़ती चली जाती है, और मांग बढ़ती चली जाती है, और मांग बढ़ती चली जाती है। और मांग में प्रेम कभी मिलता नहीं है। प्रेम उनको मिलता है जो देते हैं, जो बांटते हैं। लेकिन हमें हमेशा बचपन से यह सिखाया जा रहा है: मांगो, मांगो, मांगो! इस मांग ने हमारे भीतर प्रेम के बीज को सख्त कर दिया है।
इसलिए पहला सूत्र है: प्रेम दें। दूसरा सूत्रः देने में अगर अपेक्षा रखें, देने में अगर कोई एक्सपेक्टेशन है, देने में अगर कोई ख्याल है कि लौटना चाहिए, तो कभी नहीं लौटेगा। लौटेगा नहीं और भीतर जो पैदा हो सकता था वह पैदा नहीं होगा, क्योंकि दान कभी भी कंडीशनल नहीं हो सकता, सशर्त नहीं हो सकता। दान हमेशा बेशर्त है। दूसरा सूत्र है: प्रेम का जन्म होगा अगर बेशर्त दान हो। बेशर्त दान प्रेम की शिक्षा की दूसरी सीढ़ी है।

लेकिन हम हमेशा शर्तबंद हैं, हमारा देना। देने के पहले हमारी मांग खड़ी है। देने के वक्त हमारी अपेक्षा खड़ी है। दिया नहीं और हम तैयार हैं कि उत्तर वापस आना चाहिए। ऐसा जो मन है जो उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है, पता ही नहीं है उसे कि उस उतर की प्रतीक्षा में देने के कारण उसके भीतर जो पैदा होता है, वह उसे दिखाई ही नहीं पड़ेगा। वह वंचित हो गया। देकर बिना उत्तर की मांग किए बिना रिस्पांस की फिकर किए। दो ही बातें हैं, जब मैं किसी को प्रेम दूं तो अगर मेरी कोई अपेक्षा है तो नजर उस पर लगी रहती है कि वह क्या करता है और अगर मेरी कोई अपेक्षा नहीं है तो देने के बाद नजर खुद पर आ जाती है, कि देने से क्या हुआ है। देने से भीतर जो फूल खिल सकता है, उसके लिए ध्यान चाहिए, उसके लिए मेडिटेशन चाहिए। तो उसका ध्यान तो उस पर कभी जाता ही नहीं जो भीतर हो रहा है। ध्यान उस पर जाता है जिसके साथ हमने किया है। चूक गए एक मौका। मैंने कहा कि जैसे बीज के लिए सूरज की किरणें चाहिए ऐसे ही भीतर प्रेम के बीज के लिए ध्यान की किरणें चाहिए। मेडिटेटिव कांशसनेस चाहिए कि मेरा ध्यान भीतर जाए। ध्यान की किरणें भीतर जाएं। भूमि चाहिए दान की, किरणें चाहिए ध्यान की। तो भीतर किरणें चाहिए, लेकिन मेरा ध्यान लगा हुआ है उस पर।
मैंने किसी को हाथ का सहारा देकर जमीन से उठा दिया, तो मैं देख रहा हूं
कि आस-पास फोटोग्राफर है या नहीं। कोई अखबार वाला है कि नहीं। यह आदमी उठ कर धन्यवाद देता है कि नहीं। चूक गया मैं मौका। एक क्षण आया था जब मैं भीतर जा सकता था। और जो दान घटित हुआ था उस दान के पीछे जो भीतर फूल खिल सकता था उसे देखता। मेरे देखने के साथ ही वहां भीतर कोई कली खिल जाती, लेकिन मैं चूक गया। देखने का मौका भूल गया। मैं बाहर देखने लगा। मैं फोटोग्राफर खोजने लगा। मैं अखबार वाले को देखने लगा। मैं उस आदमी को देखने लगा कि बेईमान कुछ कहता है कि चुपचाप चला जाता है उठ कर? धन्यवाद देता है कि नहीं? चूक गया। एक क्षण, एक मोमेंट आया था, जब भीतर नजर जाती तो कोई चीज खिल जाती। आपको शायद पता न हो, आंख जहां चली जाती है वहीं चीजें खिल जाती हैं। मनुष्य के पास जो सबसे बड़ी ताकत है वह आंख की ताकत है, देखने की ताकत है, और कोई बड़ी ताकत नहीं है। सबसे बड़ी, सबसे सूक्ष्म, सबसे डेलिकेट, सबसे मूल्यवान जो ताकत है वह देखने की है। किसी को जरा प्रेम से देखें, जैसे वहां कोई चीज खिल जाती है, कोई उदासी मिट गई, कोई रोशनी हो गई। किसी को जरा प्रेम से देखें, और वहां जैसे कोई फूल खिल गया, कोई सुगंध आ गई। ऐसे ही जब कोई भीतर, अपने भीतर दान के क्षण में प्रेम से देखता है, निहारता है, तो वहां भी कोई चीज खिल जाती है, वहां भी हृदय में कोई फूल खिल जाता है। दूसरा सूत्र है: दान के क्षण में बेशर्त, बिना किसी अपेक्षा के चुपचाप, मौन, बिना किसी उत्तर के।
तीसरा सूत्र है: जो आपके प्रेम को स्वीकार कर ले उसके प्रति अनुग्रह, गेटिट्यूड कि उसने स्वीकार किया। हम तो यह चाहते हैं कि वह हमारा धन्यवाद करे कि हमने उसे प्रेम दिया। लेकिन प्रेम का बीज यह चाहता है कि हम अनुग्रह स्वीकार करें, उसका ग्रेटिट्यूड कि तुमने स्वीकार किया। तुम इनकार भी कर सकते थे। एक गिरा हुआ आदमी यह भी कह सकता था कि नहीं, मत उठाओ। फिर मेरी क्या सामर्थ्य थी कि मैं उसे उठाने का मौका पाता। लेकिन नहीं, उसने मुझे उठाने दिया। उसने एक अवसर दिया कि मेरे भीतर जो प्रेम है वह बह सके। उसने एक ऑपरच्युनिटी दी, उसके लिए मुझे धन्यवाद देना चाहिए। उसे नहीं कि वह मेरा धन्यवाद करे। मैं उसे धन्यवाद दूं कि मैं कृतज्ञ हुआ, मैं अनुगृहीत हुआ। तुमने कृपा की कि मेरे प्रेम को स्वीकार कर लिया। यह तीसरा सूत्र है, जो प्रेम को स्वीकार करे उसके प्रति अनुग्रह का भाव। इस अनुग्रह के भाव में भीतर की कली और जोर से चटखेगी और खिलेगी। क्योंकि अनुग्रह के भाव में ही जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह खिलता है और विकसित होता है। ग्रेटिट्यूड से बड़ा कोई भाव नहीं, कोई प्रार्थना नहीं, कोई प्रेयर नहीं। लेकिन हाथ जोड़े बैठे हैं, भगवान के सामने और कुछ शब्द दोहरा रहे हैं। यह सवाल नहीं है। जीवन के समक्ष अनुग्रह का भाव, तारों के समक्ष, सूरज के समक्ष, फूलों के समक्ष, लोगों के समक्ष, चारों तरफ यह जो विराट जीवन है, यह मेरे प्रेम को स्वीकार करता है। यह मेरे प्रेम को बहने का मौका देता

है। यह मेरे फुलफिलमेंट में, यह मेरी आत्म-उपलब्धि में सहयोगी और मित्र बन गया है। इस सब का, अनुग्रह, इस सबका धन्यवाद जब मन में होगा तो भीतर के झरने फूट पड़ेंगे और बह जाएंगे, और जिस दिन प्रेम का झरना भीतर बहने लगता है उसी दिन पाया जाता है कि भय, फियर कहीं भी नहीं है। है ही नहीं। वह था ही नहीं, वह कभी था ही नहीं। वह प्रेम की अनुपस्थिति थी। वह गैर-मौजूदगी थी।
जब प्रेम से हृदय भर आता है तो इस जगत में कोई भय नहीं है। तब हाथ में तलवार उठाने की जरूरत नहीं। तब राम-राम जप कर मन को बोथला करने की कोई जरूरत नहीं है। तब तो सब तरफ राम ही दिखाई पड़ने लगता है। जपना किसको है, याद किसको करना है, वही है। तब तो सब तरफ उसी परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। जब भीतर प्रेम होता है तो सारा जगत परमात्मा हो जाता है। और जब भीतर भय होता है तो सारा जगत शत्रु हो जाता है। भीतर जो है वही बाहर हो जाता है। भीतर भय है तो बाहर शत्रुता है। भीतर प्रेम है तो बाहर प्रभु है। वह प्रीतम, वह बिलॅविड है, और फिर सब तरफ वही है सब तरफ, हर इशारे में, हर घटना में, जीवन में, मौत में, कांटे में, फूल में, पत्थर में, सब में वही है।
एक छोटी सी घटना और फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।
दो भिक्षु एक लंबी यात्रा से वापस लौटे हैं। वे आठ माह तक घूमते रहे गांव-गांव, गांव-गांव प्रेम की खबर पहुंचाते रहे, प्रभु का गीत गाते रहे। वे लौटे हैं। वर्षा आ गई है सिर पर और अपने गांव पहुंचे झोपड़े में। जब वे झोपड़े के पास पहुंचे हैं, तो बूढ़ा भिक्षु पीछे है, जवान भिक्षु आगे है। उस जवान ने देखा कि झोपड़ा तो टूटा हुआ पड़ा है। आधा छप्पर हवाओं में उड़ गया मालूम होता है। वर्षा आने को है, हवाएं तेज हैं। छप्पर टूटा पड़ा है, एक दीवाल टूटी पड़ी है। उसका मन क्रोध से भर आया। उसने लौट कर अपने बूढ़े साथी को कहा: देखते हो, ये तुम्हारे भगवान की कृपा है जिसके हम गीत गाते फिरते हैं, जिसके लिए हम गांव-गांव नाचते हैं, जिसकी प्रार्थना में हमने श्वास-श्वास गवां दी, उसकी यह कृपा है? वर्षा सिर पर है और झोपड़ा टूटा पड़ा है? आधा झोपड़ा उड़ गया, आधा छप्पर उड़ गया है? और पापियों के मकान नगर में अछूते खड़े हैं, उनमें कुछ ईंट नहीं गिरी। और हम, हम जो उसी का गीत गाते हैं और उसी के लिए जीते हैं, उसके साथ यह अन्याय! इसी बात से तो शक पैदा होता है, संदेह पैदा होता है कि भगवान-वगवान कुछ नहीं है, हम गलती में पड़े हुए हैं।
वह क्रोध से भरा है। लेकिन क्रोध से भरी आंखों में उसे दिखाई नहीं पड़ा
कि बुढ़ा क्या कर रहा है। क्रोध उसका थोड़ा उतरा है। और बूढ़े से कोई उत्तर नहीं आया। क्रोध का जब भी उत्तर नहीं आता तो क्रोध जल्दी से उतर जाता है। उतर आता है तो बढ़ता है। जब कोई उत्तर नहीं आया, बूढ़ा मौन खड़ा है, तो उसने आंखें पोंछी और देखा कि बूढ़ा क्या कर रहा है। बुढ़े की आंखों से आंसू बहे जा रहे हैं, उसके हाथ जुड़े हैं आकाश की तरफ और वह कुछ बुदबुदा रहा है। वह कह रहा है, हे परमात्मा, आंधियों का क्या भरोसा, पूरा छप्पर भी उड़ा कर ले जा सकती थी। जरूर तुने बीच में बाधा दी होगी, इसलिए आधा बच गया है। धन्यवाद तेरा।
फिर वे दोनों जाकर सो गए हैं। रात ऊपर घिरी है। अंधेरी रात, आकाश में बादल घिरे हैं। आज नहीं कल, कल नहीं परसों वर्षा होगी। आधा छप्पर टूटा पड़ा है। एक दीवाल गिर गई है। वे उसके भीतर सो रहे हैं। जो जवान भिक्षु क्रोध से भर गया था, वह रात भर सो नहीं सका। क्रोध के साथ नींद का क्या संबंध हो सकता है। नींद को केवल वही सोते हैं जो क्रोध में नहीं हैं। फिर वह भयभीत है। वर्षा सिर पर है, क्या होगा? भय का नींद से क्या संबंध हो सकता है? नींद तो परम शांति है। केवल वे ही सोते हैं जो शांत हैं। और स्मरण रहे, जो सोते हैं केवले वे ही जागते भी हैं। जो ठीक से नहीं सो पाता वह ठीक से जाग भी हीं पाता।
रात भर वह करवटें बदलता रहा। रात भर उसे क्रोध, गुस्सा आता रहा है कि
अब छोड़ दूंगा यह गीत और यह प्रार्थना। लेकिन बूढ़ा सो गया ऐसे परम अनुग्रह के भाव में। उसके चेहरे पर बुढ़ापे की जैसे रेखाएं मिट गईं, वह छोटा बच्चा हो गया है, वह ऐसे सोया है जैसे अपनी मां की गोद में सिर रख कर सोया हो, क्योंकि जिसके हृदय में अनुग्रह है, यह सारा जगत उसे मां की गोद हो जाता है। रात उसकी नींद खुली है, बुढ़े की, तो आकाश में तारे देख कर उसने फिर

धन्यवाद दिया कि हे परमात्मा, अगर हमें यह पता होता कि आज इस छप्पर में इतना आनंद है फिर रात सोओ भी और कभी आंख खोलो तो तारे भी देख लो। हमें अगर पता होता कि आज इस छप्पर में ऐसा मजा है तो हम तेरी हवाओं को तकलीफ न देते हम, खुद ही आकर छप्पर गिरा देते। माफ करना, तेरी हवाओं को तकलीफ करनी पड़ी, लेकिन तू हमारी इतनी फिकर करता है। यह अनुग्रह का भाव है। यह ग्रेटिट्यूड है।
प्रेम का जन्म, तीसरा सूत्र है। अनुग्रह का भाव जो भी स्वीकार कर ले-- चारों तरफ सबके प्रति अनुग्रह का भाव, तो भीतर प्रेम का झरना फूटेगा। निश्चित फूटेगा, फूटता है। और जिस दिन प्रेम का झरना फूटता है उसी दिन भय का अंधकार विलीन हो जाता है।
जिस दिन हृदय इतने प्रेम से भर जाता है कि चारों ओर परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं, उसी दिन भय का अंधकार विलीन हो जाता है। और जहां भय नहीं है वहां प्रभु का मंदिर है। और जहां भय नहीं है वहां जीवन का सत्य है। और जहां भय नहीं है वहां जीवन का आनंद है। जहां भय नहीं है वहां जीवन का सौंदर्य है। और जहां भय नहीं है वहां जीवन का संगीत है। और हम सब विसंगीत में हैं, दुख में हैं, चिंता में हैं, भय में हैं, क्योंकि प्रेम का मंदिर हम नहीं बना पाए। आज तक की पूरी मनुष्यता गलत रही है। ठीक मनुष्यता का जन्म हो सकता है। लेकिन मनुष्य के प्राणों के भय को हटा कर प्रेम को स्थापित करना है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

प्रेम है द्वार प्रभु का दूसरा प्रवचन

जीवन की कला

मैं अत्यंत आनंदित हूं। छोटे छोटे बच्चों के बीच बोलना अत्यंत आनंदपूर्ण होता है। एक अर्थ में अत्यंत सृजनात्मक होता है। बूढ़ों के बीच मुझे बोलना इतना सुखद प्रतीत नहीं होता। क्योंकि उनमें साहस की कमी होती है, जिसके कारण उनके जीवन में क्रांति होना करीब करीब असंभव है। छोटे बच्चों में तो साहस अभी जन्म लेने को होता है। इसलिए उनके साहस को पुकारा जा सकता है और उनसे आशा भी बांधी जा सकती है। एक बिल्कुल ही नई मनुष्यता की जरूरत है। शायद उस दिशा में तुम्हें प्रेरित कर सकूं इसलिए मैं खुश हूं। मैं थोड़ी सी बातें बच्चों से कहना चाहूंगा, कुछ अध्यापकों से और कुछ अभिभावकों से जो यहां मौजूद हैं, क्योंकि शिक्षा इन तीनों पर ही निर्भर होती है।
पहली बात तो मैं यह कहूं कि विद्यालय सारी दुनिया में बनाए जा रहे हैं, विश्वविद्यालय बनाए जा रहे हैं। सारी दुनिया का ध्यान बच्चों की शिक्षा पर दिया जा रहा है और ज्यादा से ज्यादा लोग शिक्षित भी होते जा रहे हैं, लेकिन परिणाम बहुत शुभ नहीं है। अभी हमारे मुल्क में शिक्षा कुछ कम है, कुछ दिनों में बढ़ जाएगी, लेकिन शिक्षा के साथ-साथ जगत में न शांति आ रही है, न आनंद आ रहा है। हम मानते हैं कि शिक्षा देकर बहुत कुछ हो जाएगा लेकिन ऐसा होता नहीं। जरूर शिक्षा के आधारों में भूलें होंगी, निश्चित ही कुछ आधार भूत गड़बड़ होगी। शिक्षा का उपक्रम असफल होंगी, निश्चित ही कुछ आधारभूत गड़बड़ होगी। शिक्षा का उपक्रम असफल ही है। एक विवेकपूर्ण संस्कृति पैदा करने में वह बिल्कुल विफल है। हम देखते हैं कि जो मनुष्य शिक्षित हैं, वे मनुष्यता की दृष्टि से उन मनुष्यों से भी नीचे हो गए है, जो कि अशिक्षित हैं। पहाड़ों में जो आदिवासी हैं, वे हमसे ज्यादा प्रेमपूर्ण हैं। हम जो बहुत ज्यादा कठोर, असय, वा पाषाण हृदय होते जा रहे हैं, वह सब शिक्षा से ही हो रहा है। वही शिक्षा तुम्हें भी मिल रही है, वही शिक्षा सारी दुनिया में सारे बच्चों को मिल रही है। इससे डर मालूम हो रहा है। तुम्हारा भविष्य कुछ बहुत प्रकाशपूर्ण नहीं है। अगर इस शिक्षा पर तुम निर्भर रहे तो तुम्हारे संबंध में बहुत आशा नहीं बांधी जा सकती। क्योंकि आज तक इस दीक्षा से जो कुछ पैदा हुआ है वह किसी भी भांति सुखद नहीं है। जैसा कि अभी यहां कहा गया कि विद्याक्रम में धार्मिक शिक्षा जोड़ी जाए, लेकिन वह भी हो तो भी कुछ होने वाला नहीं है। क्योंकि दुनिया में धार्मिक शिक्षा बहुत दिनों से दी जा रही है, उसके परिणाम अच्छे नहीं हैं। धर्म की शिक्षा के नाम पर क्या सिखाया जाता है? अगर जैन धर्म से संबंधित विद्यालय है तो जैन धर्म की शिक्षा सिखाई जाती है और किसी दूसरे धर्म का, तो दूसरे धर्म के शास्त्र पढ़ाए जाते हैं। लेकिन शास्त्र जानने से क्या होता है? सिखाने के नाम पर बच्चों से शब्द और शास्त्र कंठस्थ करा लिए जाते हैं। कोरी बातें तुम्हारे दिमाग में डाल दी जाती हैं। तुम्हें बता दिया जाता है कि आत्मा है, स्वर्ग है, मोक्ष है। तुम्हें बता दिया जाता है कि कैवल्य-ज्ञान का क्या अर्थ है, सम्यक दर्शन क्या है, सम्यक चरित्र क्या है। यह सब तुम सीख लेते हो, उसकी परीक्षा दे देते हो और परीक्षा में अत्तीर्ण भी हो जाते हो। लेकिन इससे कोई बेहतर आदमी पैदा नहीं होता। मैं ऐसी धार्मिक शिक्षा के विरोध में हूं, क्योंकि उससे परिणाम भले की जगह बुरे ही निकलते हैं।
ऐसी शिक्षा के परिणाम स्वरूप छोटे-छोटे बच्चे यदि जैन स्कूल में पढ़े
तो जैन ही हो जाते हैं, मुसलमान स्कूल में पढ़ें तो मुसलमान हो जाते हैं, ईसाई स्कूल में पढ़ें तो ईसाई हो जाते हैं, और फिर ये जैन, मुसलमान, ईसाई आपस में झगड़ाकर परेशानी पैदा करते हैं। इन सांप्रदायिक बुद्धि के लोगों से मनुष्यता का निरंतर घात होता है। इस भांति की शिक्षा से तुम्हारे भीतर धर्म का नहीं, वरना धार्मिक संकीर्णता और जड़ता का जन्म होता है। तुम संप्रदायों से बंध जाते हो; सारी मनुष्यता के साथ, एकात्मकता के साथ न

बंधकर एक अलग छोटे से टुकड़े के साथ बंध जाते हो और इन टुकड़ों के कारण दुनिया में बहुत संघर्ष, बहुत वैमनस्य और बहुत ईर्ष्या चली है। इसके इतने दुखद परिणाम हुए है, इतनी हिंसा बढ़ी है, कोई हिसाब नहीं। तो फिर क्या करें? मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि धार्मिक शिक्षा की जरूरत नहीं है, धार्मिक साधना की जरूरत है। और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि धार्मिक शिक्षा या तो जैनियों की होगी या मुसलमानों की होगी या हिंदुओं की होगी-- लेकिन धार्मिक साधना न तो जैन की होती है, न मुसलमान की होती है, न हिंदू की होती है। धार्मिक साधना तो बात ही अलग है--उसका संप्रदाय से कोई संबंध नहीं है। धार्मिक साधना का क्या अर्थ है?
धार्मिक साधना का अर्थ है: बच्चों को सत्य के लिए तैयार करो, प्रेम के लिए तैयार करो। धार्मिक साधना का अर्थ है: बच्चे को शांति के लिए तैयार करो, ध्यान के लिए तैयार करो, आत्मा के भीतर जाने के लिए तैयार करो। सत्य न तो जैन का होता है, न मुसलमान का होता है, न हिंदू का होता है। प्रेम न तो जैन का होता है, न मुसलमान का होता है, न हिंदू का होता है। ध्यान किसी संप्रदाय का नहीं होता। लेकिन हम देते हैं धार्मिक शिक्षा और देनी चाहिए धार्मिक साधना। लेकिन आज धार्मिक साधना देने के लिए कोई उत्सुक नहीं है। बच्चों को मनुष्य बनाने की किसी की भी उत्सुकता नहीं है। हिंदू डरा हुआ है कि उसका लड़का ईसाई न हो जाए इसलिए उसके दिमाग में रामायण और गीता भर दी जाती है। ऐसे ही ईसाई भी भयभीत है। यह भय है सारी दुनिया में। और इस भय की वजह से सभी धर्म कहते हैं कि बच्चों को धार्मिक शिक्षा दी जाए। उनकी कोई इच्छा मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने की नहीं है। उनकी इच्छा तो हिंदू बनाने की है, जैन बनाने की है, मुसलमान बनाने की है। और जो मनुष्य ऐसे विशेषणों के साथ है, वह ठीक मनुष्य नहीं है। मैं पूछना चाहता हूं कि क्यों बच्चों को हिंदू बनाया है, जैन बनाना है, ईसाई बनाना है--क्या सांप्रदायिक मूढ़ताओं और संकीर्णताओं और वैमनस्यों ने मनुष्य जाति की काफी हानि नहीं कर ली है? धर्म का जन्म इन धर्मों के कारण ही तो नहीं हो पाता है। इसलिए जिनका धर्म से प्रेम है, उनके सामने पहला लक्ष्य है: मनुष्य जाति की धर्मों से मुक्ति। जिसे धर्म का होना है, उसके लिए धर्मों के होने का कोई भी मार्ग नहीं है।
अगर मनुष्य बनाना है तो धार्मिक शिक्षा में नहीं, धार्मिक साधना में जाना पड़ेगा। और धार्मिक साधना का रास्ता बिल्कुल अलग है धार्मिक शिक्षा से। धार्मिक शिक्षा से थोथा पांडित्य पैदा होता है, धार्मिक साधना से धार्मिक चित्त पैदा होता है। पांडित्य और ज्ञान में अंतर है। थोथा पांडित्य दुनिया में मिट जाए तो बेहतर। दुनिया में ज्ञान चाहिए। धार्मिक चित्त से संतत्व पैदा होता है। और संतत्व बहुत कम है, क्योंकि जिस संत को यह ख्याल हो कि मैं जैन हूं, हिंदू हूं, मुसलमान हूं, तो समझ लेना कि वह अभी पंडित ही है। अभी तो तथाकथित संत भी इस हालत में नहीं है कि पूर्ण मनुष्यता के साथ अपना तादात्म्य कर सके। संत घर द्वार को छोड़ देता है, बच्चे छोड़ देता है, पत्नी को छोड़ देता है, वस्त्र भी छोड़ देता है लेकिन मुझे शक है उसने समाज को छोड़ा या नहीं। अगर वह हिंदू घर में पैदा हुआ तो उसने हिंदू पन को तो छोड़ा ही नहीं और यदि वह जैन घर में पैदा हुआ है तो वह अभी भी जैन बना हुआ है। वह कहता है कि मैंने समाज को छोड़ा लेकिन समाज को कहां छोड़ा? जिस समाज ने सिखाया कि तुम जैन हो, हिंदू हो, मुसलमान हो--वह उसी का तो हिस्सा बना हुआ है। पत्नी को छोड़ना बहुत आसान है, पत्नी को छोड़ना बहुत कठिन नहीं है। यदि मौका मिल जाए तो पत्नी छोड़ने को हर कोई राजी हो सकता है। पत्नी को छोड़ना कठिन नहीं है, क्योंकि पत्नी को, झेलना एक उत्तरदायित्व है। अपने बच्चों को छोड़कर भागना भी कठिन हनीं है, हर कोई कमजोर और काहिल बच्चों को छोड़कर भागना भी चाहेगा। वह कोई कठिनाइयां नहीं हैं। और जिस समाज में छोड़कर भागनेवाले को आदर मिलता हो वहां तो यह बहुत ही सरल बात है। छोड़ने से व्यक्ति उत्तरदायित्व से तो बच ही जाता है और आदर को भी उपलब्ध हो जाता है। अहंकार की भी तृप्ति होती है और बोझ भी कह हो जाता है।

यदि छोड़ना है तो समाज के उन संस्कारों को, उसके दिए गए विचारों को, समाज के द्वारा भीतर डाले गए ख्यालों को छोड़ो, किंतु समाज के द्वारा डाले गए घेरे को तोड़ना कठिन है। इसे जो जोड़ता है मेरी दृष्टि में वही साधु है। और जो इसके भीतर खड़ा है, वह पंडित से ज्यादा कभी नहीं है। दुनिया में साधना की जरूरत है। ऐसे साधु यदि दुनिया में हो सकें तो दुनिया एक अलग ढंग की दुनिया हो सकती है। एक बहुत बड़ी दुनिया का निर्माण हो सकता है जहां सारी दुनिया के बीच प्रेम का सागर लहरा सके। यह कौन करेगा? अगर यह छोटे छोटे बच्चे नए ढंग से तैयार किए जाए तो यह हो सकता है। नहीं तो नहीं हो सकता है। मगर यह छोटे बच्चे भी उन्हीं ढांचों में ढाले जा रहे हैं, जिनमें हजारों सालों से ढलाई चल रही है। ये भी उन्हीं ढांचों में डालकर तैयार किए जाएंगे और उन्हीं लड़ाइयों को लड़ेंगे, ईर्ष्याओं को पालेंगे और उन्हीं घृणाओं में जीएंगे जिनमें इनके मां बाप जिए थे।
दुनिया को बदलने के लिए शिक्षा बुनियादी से धार्मिक होनी चाहिए, लेकिन धार्मिक शिक्षण नहीं, धार्मिक साधना। इन बातों का स्पष्टी करण हो जाए तो इस गुरुकुल में भी एक क्रांति हो सकती है। धार्मिक साधना की फिकर कीजिए। बच्चों को हिंदू या जैन बनाने की कोशिश छोड़ दीजिए। बहुत दिन दुनिया में हिंदू, जैन टिकने वाले नहीं हैं। दुनिया में धर्म बचेगा, हिंदू, जैन नहीं। न यह दुनिया में बचने ही चाहिए। क्योंकि इनके कारण दुनिया में परेशानियां ही हुई हैं। यह भी मैं निवेदन करना चाहता हूं कि दुनिया से अगर हिंदू, जैन, मुसलमान, बौद्ध, ईसाई चले जाए तो कोई हर्जा नहीं, महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट भी नहीं जाते। जैन के मिटने से महावीर नहीं मिटते बल्कि जैनों के होने से महावीर मिटे हुए हैं। जैनों की वजह से महावीर सबके हो नहीं पाते। एक घेरा डाले है जैनी महावीर के चारों तरफ और इनकी वजह से दूसरों के लिए दरवाजा बंद है। कितने जैन हैं जिन्होंने बाइबिल को पढ़ा हो, क्योंकि बाइबिल को ईसाइयों ने बांधकर रखा है। क्या आपको पता नहीं कि बाइबिल में अदभुत हीरे भरे हैं? कितने ईसाई हैं जिन्होंने महावीर की वाणी पढ़ी है, क्योंकि महावीर को जैन बांधकर रखे हुए हैं। और महावीर की वाणी में अदभुत खजाने भरे हैं। दुनिया में जितने भी महत्वपूर्ण खजाने थे उस खजानों पर दुष्टों ने कब्जा कर लिया है, और पूर्ण मनुष्य जाति को उससे वंचित कर दिया है। यह घेरे टूटने चाहिए ताकि यह सारी संपत्ति सबकी हो जाए। महावीर सबके हों, राम सबके हों, कृष्ण सबके हों, क्राइस्ट सब के हों।
विज्ञान तो तुम सब पढ़ते होगे। विज्ञान की खोज तो सारी दुनिया की खोज होती है। एडीसन अगर कोई खोज करता है तो वह किसकी होती है? आईन्स्टीन अगर कोई खोज करे तो वह खोज सारी दुनिया की हो जाती है। कोई भी वैज्ञानिक दुनिया में खोज करता है तो सारी दुनिया की हो जाती है। लेकिन धर्म के संबंध में जो बहुमूल्य खोज हुई है वह सारी दुनिया की अभी तक नहीं हो पाई है। इससे दुनिया बहुत दरिद्र है। इससे दुनिया की जो आध्यात्मिक समृद्धि हो सकती थी वह नहीं हो पाई।
बच्चों को इस भांति तैयार किया जाना चाहिए कि वे मनुष्य बने, धार्मिक बनें। धार्मिक होना तथाकथित धर्म भेदों में उलझने से दूसरी बात है। एक दिन एक साधु मेरे पास ठहरे हुए थे। सबेरे ही उठकर उन्होंने पूछा कि जैन मंदिर कहां है? मैंने पूछा कि क्या करिएगा जैन मंदिर को जानकर? उन्होंने कहा कि मैं आत्मध्यान के लिए वहां जाना चाहता हूं, सामायिक के लिए वहां जाना चाहता हूं। मैंने कहा कि आप निश्चित हैं कि आपका आत्मघात ही करना है? और कोई बात तो नहीं है? उन्होंने कहा कि निश्चित हूं, मुझे शांति चाहिए और आत्मघात करना चाहता हूं, और कुछ नहीं। मैंने कहा कि यहां जो जैन मंदिर है, वह जो बाजार में है, हमारे बगल में एक चर्च हैं, वहां एकदम सन्नाटा है, एकदम शांति है और आज रविवार भी नहीं है, इस लिए वहां कोई ईसाई भी नहीं आएगा, आप वहां जाए और आत्मध्यान करें, चर्च का नाम सुनते ही साधु सटपटाए और कहने लगे चर्च में? मैंने कहा आपको तब आत्मध्यान से कोई संबंध नहीं है। जिसे चर्च शब्द से बाधा है, वह आत्मा को जान सकेगा यह असंभव है। यह मारे साधु की बुद्धि है। जिसको चर्च जैसी छोटी चीज से बाधा है वह आत्मा जैसी विराट

शक्ति से कैसे परिचित हो सकता है? यह असंभव है। मैंने कहा कि आपको जैन मंदिर जाना है, आपको आत्मघात से कोई मतलब नहीं है, न ध्यान से कोई मतलब है। जैन मंदिर इसलिए जाना है कि बचपन से ही सिखाया गया है कि मंदिर जाना धर्म है।
मैं आपसे कहना चाहूंगा कि आत्मा में जाना धर्म है, किसी मंदिर में जाना धर्म नहीं। लेकिन शिक्षा अगर होगी तो वह सिखाएगी कि जैन मंदिर में जाना धर्म है, और साधना अगर होगी तो वह सिखाएंगी कि भीतर जाना धर्म है। एक ईसाई से भी मैं यही कहता हूं कि चर्च अगर दूर है और जैन मंदिर पड़ोस में हैं तो वहीं बैठ जाओ, हिंदू मंदिर पड़ोस में है तो वहीं बैठ जाओ। सवाल महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप किस मंदिर में बैठे हैं, सवाल महत्वपूर्ण यह है कि आप अपने भीतर प्रवेश करते हैं या नहीं? जहां आप अपने भीतर प्रवेश करते हों वहां धर्म से संबंधित होते हैं और जहां आप मकानों का हिसाब-किताब रखते हैं वहां आपका धर्म से कोई संबंध नहीं है।
मैं एक महानगरी में जाता था। वहां एक मित्र के यहां ठहरता था। उनकी बगल में ही चर्च था। बहुत सन्नाटे का स्थान था। मैं सुबह ही उठता और चर्च में चला जाता। मेरे मित्र ने कहा, आपने मुझे क्यों नहीं कहा, मैं आपको मंदिर ले चलता। मैंने कहा, मेरा काम तो यही पूरा हुआ। लेकिन में चर्च में गया इस कारण से बहुत दुखी हुए। फिर पांच वर्षों के बाद दोबारा उनके यहां मेहमान हुआ। सुबह से वे मुझ से बोलः धर्मस्थान चलिए। गया तो हैरान हो गया। वे उसी चर्च में ले गए थे उसको अब ईसाइयों ने बेच दिया था। अब स्थान मंदिर हो गया था। मैंने उनसे पूछा, यह वही जगह है, जहां मैं पहले आया था। उस समय आप नाराज हुए थे। इस बार इस जगह आप बड़ी खुशी से मुझे लेकर आए हैं। इस जगह में तो कोई भी फर्क नहीं पड़ा है। उन्होंने कहा: बहुत फर्क पड़ गया है, पहले चर्च था अब पवित्र मंदिर है।
जिनकी बुद्धि इन तख्तियों में लटकी हो, उनको भी कभी आत्मा से संबंध हो सकता है? यह असंभव है लेकिन यह तख्ती तुम्हें भी सिखाई जा सकती है, इस नाम पर कि तुम्हें धार्मिक शिक्षा दी जा रही है और यह खतरनाक होगी। यह कोई धार्मिक शिक्षा नहीं है। बच्चों को सिखाया जाना चाहिए कि तुम भीतर कैसे जा सको और यह बड़े मजे की बात है कि बूढ़े की बजाए बच्चे बड़ी आसानी से आत्म प्रवेश कर सकते हैं, क्योंकि बूढ़ों की बजाय बच्चे ज्यादा सरल हैं, ज्यादा सौम्य हैं, ज्यादा भावयुक्त हैं। इसलिए बच्चों में बहुत शीघ्रता से भीतर प्रवेश हो सकता है। बच्चे बहुत शीघ्रता से ध्यान में और सामायिक में प्रवेश पा सकते हैं। लेकिन बच्चे को कोई सिखाने वाला नहीं है। और सिखाएगा कौन? क्योंकि जो सिखानेवाला है उसे भी कोई पता नहीं। वह शिक्षक जो बच्चों के लिए धर्म शिक्षा के लिए नियुक्त किया गया है उसका भी आत्मा से कोई संबंध नहीं। और यही सारी कठिनाई हो गई है।
शिक्षकों को भी पुनः स्थिति होने की आवश्यकता है। लेकिन यदि वे सोच विचार करें तो वे स्वयं ही सम्यक दिशा में दीक्षित हो सकते हैं। वे स्वयं ही अपने विवेक को जागृत कर सकते हैं। और जिन शिक्षकों की ध्यान में गति हो, वे छोटे-छोटे बच्चों को ध्यान में ले जा सकते हैं। ध्यान कठिन भी नहीं है। ध्यान अत्यंत सरल प्रक्रिया है और एक बार उसकी छोटी सी भी झलक मिल जाए तो उसे छोड़ना कठिन है। एक बार थोड़ा सा आनंद मिल जाए तो मनुष्य का मन ऐसा है कि वह अपने आप आनंद की तरफ बहता है। मैं यहां बोल रहा हूं और एक व्यक्ति पास में वीणा बजाने लगे तो आपमें से बहुतों का मन उसकी तरफ अपने आप बह जाएगा। क्योंकि वीणा मग जो आनंद की झलक है वह मन को अपने भीतर की ओर ले जाती है। एक बार पता चल जाए कि भीतर एक आनंद है, उसकी थोड़ी सी भी झलक तुम्हीं मिल जाए तो तुम्हारा मन बार-बार वहीं लौट जाता है। दुनिया में बहुत से कामों के बीच चौबीस घंटे में यदि दो चार बार भी मन भीतर प्रवेश कर जाए तो जीवन में एक ताजगी होगी, एक आनंद होगा, जो अदभुत होगा। इस ताजगी और आनंद का यह परिणाम होगा कि तुम्हारे भीतर क्रोध और वासनाएं क्षीण होती चली जाएगी।
गुरुकुल के भीतर सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह नहीं है कि बहुत बड़े मकान बनाए जाए, यह भी महत्वपूर्ण नहीं है कि वहां धर्म की शिक्षा दी जाए। यह भी महत्वपूर्ण नहीं है कि वहां खास ढंग से कपड़े पहनाए जाए, खास तरह का खाना

खिलाया जाए, खास समय पर उठा जाए, ये सब बातें बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं। यह जीवन का अत्यंत क्षुद्र अनुशासन है। और इनमें ही यदि विद्यार्थियों को बहुत अधिक बांध दिया जाए तो बाद में वे ऊंचा उठने में असमर्थ हो जाते हैं। विवेकानंद से किसी ने अमेरिका में पूछा कि आपके देश में धर्म की बहुत चचा है, लेकिन धार्मिक लोग तो दिखाई नहीं पड़ते? विवेकानंद ने कहा किः मेरे देश मग दुर्भाग्य हो गया है, मेरे देश का सारा धर्म चौके और चूल्हे का धर्म हो गया है। इसलिए सब गड़बड़ हो गई है। हमारा। मन चौके और चूल्हे में उलझ गया है। हमारा सारा चिंतन एक जगह केंद्रित है: क्या खाओ, क्या न खाओ, किस समय खाओ और किस समय न खाओ। यह सब अच्छी बातें हो सकती हैं लेकिन खतरा यह है कि तुम्हारा मन इन्हीं सारी बातों में उलझ जाए तो तुम इनसे ऊपर उठ कर विराट शक्ति तक न पहुंच पाओगे।
गुरुकुल में जीवन की बहुत बुनियादी शिक्षा दी जानी चाहिए। मात्र आजीविका की शिक्षा पूरी शिक्षा नहीं है। तुम पांच-छह वर्षों तक रहोगे इस बीच तुम किसी न किसी तरह आत्मा से संबंधित होने के मार्ग को पा जाओ तो इसको मैं जीवन की शिक्षा और साधना कहूंगा। यही धर्म की साधना है। जीवन जीने की सम्यक कला ही तो धर्म है। धर्म जीवन विरोधी नहीं है। और जो धर्म जीवन विरोधी हो उसे धर्म ही न जानना। वह जरूर मृत्युमुख रुग्ण मस्तिष्कों की उपज होगा। ऐसी मृत्युमुख शिक्षाओं ने ही जीवन से धर्म का संबंध तोड़ दिया है। फिर शिक्षाओं को जबरदस्ती ही थोपना पड़ता है। क्योंकि हमारे भीतर जो जीवन है, वह उनका विरोध करता है।
सम्यक धर्म का तो जीवन में सदा स्वागत है क्योंकि वैसे धर्म के आधारों पर ही तो जीवन आनंद को, सौंदर्य को, सत्य को और अमृतत्व को उपलब्ध होता है। मिथ्या धर्म सदा ही नकारात्मक होता है। यही उसकी पहचान है। सम्यक धर्म होता है सदा विधायक। मिथ्या धर्म आत्म कलह में डालता है। वह कहता है यह न करो, वह न करो। विधायक धर्म आत्मसृजन में संलग्न करता है। वह जीवन की सभी शक्तियों को ऊर्ध्वमुखी बनाता है। वह कहता है: यह करो, यह करो, यह करो। वह छोड़ने को नहीं, पाने को कहता है। उसका जोर सदा ऊपर उठने पर होता है। निश्चय ही जो ऊपर उठता है, उससे बहुत कुछ अपने आप छूटता जाता है। लेकिन बल पाने के लिए है, खोने के लिए नहीं। वह कहता है: संसार को नहीं छोड़ना है बल्कि परमात्मा को पाना है।
इस संबंध में यह ध्यान रहे कि धर्म की साधना बच्चों पर थोपी न जाए क्योंकि जो थोपा जाता है प्राण उसके प्रति विरोध से भर जाते हैं। छोटे छोटे बच्चों के प्राण भी विरोध से भर जाते हैं और फिर यह विरोध जीवन भर उनके साथ रहता है। मैं एक बार थोड़े दिन के लिए एक संस्कृत महाविद्यालय में था। वहां के छात्रालय में सौ के करीब विद्यार्थी थे। वे सभी विद्यार्थी शासन से छात्रवृत्ति पाते थे। छात्रवृत्ति के कारण उनसे कुछ भी करवाया जा सकता था। उन्हें तीन बजे रात्रि से उठकर स्नान करके प्रार्थना करनी पड़ती थी। सर्दियों के दिन थे। पहले ही दिन जब मैं स्नान करने कुएं पर गया तो एकदम अंधकार था। मैंने देखा कि विद्यार्थी वहां स्नान भी करने जाते थे और प्रिसिंपल से लेकर परमात्मा तक को गालियां भी देते जाते थे। यह स्वाभाविक ही था। उस गहरी सर्दी में स्नान करने के लिए बाध्य करने में प्रिसिंपल का हाथ था, इसलिए वे पुरस्कार स्वरूप प्रिसिंपल को गालियां देते थे और प्रिसिंपल के सत्संग के कारण बेचारे परमात्मा को भी गालियां खानी पड़ती थी।
धर्म के प्रति अरुचि पैदा करना बहुत आसान है। प्रश्न तो है रुचि पैदा करने का। और धार्मिक शिक्षा देनेवाले रुचि पैदा करने में अक्सर ही असफल होते हैं। शायद मनुष्य के मन के अत्यंत सीधे सादे नियमों पर भी हम ध्यान नहीं देते है, इसीलिए उस महाविद्वालय में जिस भांति प्रार्थना करवाई जा रही थी, उससे प्रार्थना के साथ भावों का संबंध होना असंभव है। प्रार्थना तो प्रेम और आनंद से स्फुरित हो, तो ही सार्थक हो सकती है। इसलिए मेरा कहना है: बच्चों के साथ जल्दबाजी न करना। भय से, दंड से, धर्म का संबंध न जोड़ना। ऐसी बातें उनके चित्त को सदा के लिए अधार्मिक बना देती हैं। मैंने उस महाविद्यालय के प्रिसिंपल को यह कहा था तो वे मानने को राजी नहीं हुए थे,

उलटे उन्होंने कहा: हम कोई जबरदस्ती नहीं करते हैं। मैंने कहा: एक सूचना निकालिए कि कल से जिसे स्वेच्छा से प्रार्थना में आना हो वे ही आवें। सूचना निकली गई। दूसरे दिन सौ में से एक भी नहीं आया। तब वे हैरान हुए। मैंने कहा: ऐसी प्रार्थना का क्या मूल्य है? फिर मैं उन बच्चों को सुबह सात बजे लेकर प्रार्थना के लिए बैठता था। प्रार्थना क्या थी, बस हम मौन होकर बैठते और सुबह की चिड़ियों के गीत सुनते। प्रभातकालीन मौन में बच्चों को आनंद आने लगा। धीरे धीरे वे सभी बच्चे स्वेच्छा से सम्मिलित होने लगे। यदि किसी दिन कोई बच्चा न आ पाता तो दुखी होता, क्योंकि सुबह की प्रार्थना का जो आनंद था, उसकी कमी उसे दिन भर खलती। उस छात्रावास में प्रार्थना एक आनंद हो गई। वे क्षण अमूल्य हो गए। उस आनंद और शांति के लिए बच्चे के हृदय सहज ही परमात्मा के प्रति कृतज्ञात से भर जाते थे। और ये वे ही बच्चे थे जो पहले परमात्मा को गालियां देते थे।
गुरुकुल जैसे स्थानों में जबरदस्ती जरा भी नहीं होनी चाहिए। और धर्म
के संबंध में तो जरा भी नहीं होनी चाहिए। इस बात से बहुत बड़ी हानि नहीं है कि बच्चा देर तक सोता रहा, लेकिन हम बात से हानि है कि बच्चा जबरदस्ती उठाया गया। देर से सोने में दुनिया में कोई हानि नहीं हुई। दुनिया में बहुत से महापुरुष देर से सोकर उठते रहे हैं। देर से उठने या जल्दी उठने का इतना महत्वपूर्ण मामला नहीं है। यह ठीक है कि कोई जल्दी उठे, सुखद है, स्वास्थप्रद है, लेकिन कोई बड़ी हानि नहीं होती है। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूं कि बच्चों के साथ किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं होनी चाहिए। शिक्षक और मां-बाप बच्चों के साथ बहुत प्रकार की हिंसा करते हैं, और उनको ख्याल नहीं होता कि वे हिंसा कर रहे हैं। वे समझते हैं कि बहुत प्रेम प्रकट कर रहे हैं। वे समझते हैं कि हम बच्चों को बड़ा सुधार रहे हैं। अगर इस ढंग से बच्चे सुधरे होते तो आज सारी दुनिया सुधर गई होती। दुनिया तो सुधरती नहीं और आप उन्हें सुधार जा रहे हैं। आपके सुधार में जरूर गड़बड़ होगी। और अक्सर यह होता है कि जो मां-बाप बच्चे को सुधारने में लगे हैं, उनके बच्चे उतने बिगड़ते हैं, जितने दूसरे के नहीं बिगड़ते हैं।
अति अनुशासन के घातक परिणाम होते हैं। अनुशासन की जगह बच्चों के विवेक को जगाए। उनमें स्वयं की विचार शक्ति को पैदा करें। यांत्रिक अनुशासन नहीं, चाहिए सजग विवेक। लेकिन यांत्रिक अनुशासन थोपना आसान है, इसलिए हम उसे ही चुन लेते हैं। नहीं मित्रों, चाहे विवेक जगाना कितना ही कठिन हो, और उसके लिए कितना ही श्रम और प्रतीक्षा करनी पड़े, तो भी यांत्रिक अनुशासन चुनना उचित नहीं है। मनुष्य की विकृति में यांत्रिक अनुशासन से अधिक और किसी चीज का हाथ नहीं है। यांत्रिक अनुशासन की प्रतिक्रिया स्वरूप ही अच्छृंखलता खड़ी होती है। क्या आज तक यही नहीं देखा गया कि जिनके मां-बाप बच्चों को सुधारने में लग जाते हैं, उसके विपरीत ही बच्चे खड़े होते हैं? इसके पीछे कारण हैं। क्योंकि अच्छा करने के पीछे आप बच्चों के साथ हिंसा करने लगते हैं, क्योंकि आपके पा ताकत है--लेकिन बच्चा प्रतिहिंसा को इकट्ठी करता रहेगा और वह आज नहीं कल उसका बदला लेगा और बदला खतरनाक होगा। जब भी लड़के के हाथ में ताकत आएगी वह आपके विरोध में खड़ा हो जाएगा। और जो जो आपने सिखाया था, उसके उल्टा वह चलने लगेगा। दुनिया में इतनी अनैतिकता है, दुनिया में इतनी अनुशासनहीनता है, लड़के आज्ञा तोड़ रहे हैं, लड़के मां-बाप की मर्यादाएं नष्ट कर रहे हैं। इसमें मां-बाप और शिक्षक का ही हाथ है। सारी मर्यादाएं जबरदस्ती थोपी जा रही हैं और उनके विरोध में प्रतिक्रिया खड़ी होती है।
इन बच्चों के साथ आपकी बहुत बड़ी कृपा यह होगी कि इन बच्चों के साथ किसी भी तरह हिंसा का वातावरण गुरुकुल में न हो। इन पर किसी भी प्रकार का बलपूर्वक अनुशासन न हो। अच्छे करने के लिए भी नहीं, क्योंकि दुनिया में जबरदस्ती से कोई कभी अच्छा हुआ ही नहीं है। आप कहेंगे कि फिर तो स्वच्छंदता हो जाएगी, फिर इन बच्चों का क्या होगा? तो मैं यह निवेदन करूं कि बच्चे प्रेम से बदलते हैं, जबरदस्ती से नहीं। जितना ज्यादा से ज्यादा प्रेम दिया जा सके, उतना वे अनुगृहीत होते हैं। जितनी स्वतंत्रता दी जा सके, उतना वे आदर से भरते हैं। जितना बच्चों को ज्यादा ज्यादा प्रोत्साहन

दिया जा सके, मुक्त किया जा सके, उतना ही उनके मन में पैदा होती है और वे मानने को तैयार होते हैं। बच्चों को जितना ज्यादा दबाया जाए उतना ही विरोध पैदा होती है।
फ्रायड का नाम आपने सुना होगा। वह बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हो गया है।
एक दिन वह, उसकी पत्नी और उसका बच्चा बगीचे में घूमने गए। जब रात हो गई और वे घर को लौटने लगे तो बच्चा दिखाई नहीं दिया। पत्नी घबड़ाई गई और बोलीः अब बच्चे को कहां खोजें? क्या आप सोच सकते हैं कि फ्रायड ने क्या पूछा? उसने पूछः तुमने बच्चे को कहीं जाने के लिए मना तो नहीं किया था? पत्नी ने कहा: बड़े फुहारे पर जाने के लिए मना किया था। फ्रायड बोला: तो चलें, वहीं चल कर देख लें। वह वहां फुहारे पर पैर लटकाए बैठा हुआ था। उसकी पत्नी बोली कि आपने कैसे पहचान लिया कि बच्चा बड़े फुहारे पर ही गया होगा? फ्रायड ने कहा कि पूरी मनुष्य जाति का अनुभव यही है। जिन बातों के लिए मां-बापों ने मना किया, बच्चे वहीं गए। इसलिए मना करनेवाले मां-बाप जिम्मेवार हैं। उनकी मनाही में जिम्मा है।
बच्चे वहां जाएंगे जहां मना किया गया है। मना करते वक्त जरा सोच समझ
कर ही मना करना। क्योंकि हम जिस बात को कह रहे हैं मत करो, वह करने की प्रेरणा बन रही है। बच्चे के मन में यह बात बल पकड़ रही है कि वहां कुछ होगा, कुछ रहस्यपूर्ण, जानने जैसा और कुछ करने जैसा। आप उसके भीतर खोज को जगा रहे हैं। भीतर जिज्ञासा को जगा रहे हैं। दुनिया में जो पतन हुआ है, वह मत करो की शिक्षा के कारण ही हुआ है। अभी भी धर्म-गुरु, संन्यासी यह कहते हैं कि यह मत करो, वह मत करो, इन सब बातों का परिणाम यह हो रहा है कि पतन रोज करीब आता जा रहा है। मनुष्य नीचे गिरता जा रहा है।
मत करो कि शिक्षा से विषाक्त और जहरीली शिक्षा न कोई है, न हो सकती है। इसलिए इन बच्चों को मत करो की शिक्षा देना ही नहीं। इन बच्चों की यह सिखाना कि कुछ चीजें करने जैसी हैं। यह मत सिखाओ कि कौन सी चीजें न करने जैसी हैं। नकारात्मक नहीं, विधायक शिक्षा होनी चाहिए। दुनिया में कौन सी चीजें करने जैसी हैं और उन चीजों में कौन सा आनंद है, उस आनंद की ओर इन्हें प्रेरित करें। बच्चों से यदि यह कहें कि मांस मत खाना तो वह मांस अवश्य ही खाएंगे। उन्हें यह कहा जाए कि शराब मत पीना तो वे आज नहीं कल शराब जरूर पीएंगे। इसमें कसूर होगा उन लोगों का जो इन्हें समझा रहे हैं, सिखा रहे हैं। उनको क्या सिखाया जाए फिर।
बच्चों को कुछ करने के लिए बताया जाए, न झरने के लिए नहीं। जीवन के सृजनात्मक द्वार उनके लिए खोले जावें। निषेध नहीं, विधेय ही शिक्षा का लक्ष्य हो। उन्हें सृजनात्मक आनंद की ओर उन्मुख किया जाए। फिर तो वे दुख से और अशांति से स्वयं ही दूर रहेंगे। उन्हें प्रकाश के लिए दीक्षित किया जाए फिर तो अंधकार उन्हें खुद ही प्रीतिकर न रहेगा। और हम करते हैं उलटा ही। प्रकाश की दीक्षा तो नहीं देते, हां अंधकार से बचने की शिक्षा जरूर देते हैं।
एक बार एक मित्र मेरे पास आए। उन्होंने आकर कहा कि मैं बहुत दिनों से आपके पास आना चाहता था, लेकिन नहीं आया कि आपके पास आऊंगा तो आप मांस और शराब छोड़ने के लिए कहेंगे। ये दोनों काम मैं करता हूं। मैंने कहा किः जिंदगी में मैंने तो कभी नहीं कहा कि यह छोड़ो, यह मत करो वे बोले कि यह जैसे ही ज्ञात हुआ मैं आपके पास आ गया हूं। उन्होंने कहा, मेरा मन बड़ा अशांत है। मैंने उनसे ध्यान करने के लिए कहा। मन कैसे शांत हो, इसके बारे में कहा। उन्होंने कहा कि इसके लिए मांस और शराब पीना छोड़ना तो जरूरी नहीं है? मैंने कहा: बिल्कुल नहीं। तीन बाद वापिस लौटे तो कहने लगे कि जैसे जैसे मन शांत होता गया, शराब पीना मुश्किल हो गया। शांत मन का व्यक्ति शराब ही नहीं पी सकता। छोड़नी ही पड़ती है। पीने का कारण ही नहीं रह जाता। अशांत मन भूलना चाहता है अपने को, इसलिए शराब पीता है, सिनेमा देखता है, गाना सुनता है। यह सब भूने की तरकीबें हैं। अगर भूने की तरकीबें छीन ली जाए तो वह पागल हो जाएगा। मन अगर शांत है तो भुलाने के लिए उपाय करने की जरूरत ही नहीं है। उन्होंने मुझसे कहा: शराब तो गई, क्या मांसाहार भी छोड़ना पड़ेगा? मैंने कहा: मुझको पता नहीं। अभी भी आपकी मर्जी हो तो ध्यान छोड़ दे। उन्होंने कहा

: अब ध्यान छोड़ना कठिन है। क्योंकि भीतर मुझे आनंद झरता हुआ मालूम होता है। वे तीन माह बाद वापिस लौटे और कहने लगे कि मांस खाना भी कठिन हो गया है। कल एक मित्र के साथ पार्टी में गया था। पार्टी में मांस खाने का आग्रह हुआ। मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि मैंने पहले मांस कैसे खाया होगा। और मुझे ग्लानि होने लगी। घर लौटते ही मुझे कै हो गई।
यह निश्चित है कि मन जब शांत होगा तो दूसरे को दुख देना असंभव हो जाता है। मन जब अशांत होता है, तो दूसरों को दुख देने में मजा आता है। यह सब भीतर अशांति के कारण होता है। तो बच्चों को विधायक रूप से शांति होने का उपाय समझाइए। उन्हें जीवन में शांत होने की प्रक्रिया दें। शांत चित्त ही समग्र बुराइयों और पापों के प्रति एकमात्र सुरक्षा है। इसके लिए एक ही उपाय है कि नकारात्मक शिक्षा को क्षीण करें। बच्चों के जीवन में आनंद जगाए। और जहां आनंद है, जहां शांति है, जहां बच्चों के भीतर विवेक है, वहां बच्चों को बुरे काम करने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। लेकिन हम सिखाते हैं बुरे काम मत करो। हम गलत ही बात सिखाते हैं। और जब आदमी को गलत बातें करता देखते हैं तो जमाने को दोष देते हैं। कोई जमाने को खराबी नहीं है। क्योंकि हमारे दृष्टिकोण, हमारे आधार सबके सब गलत हैं। ये ही बच्चे अदभुत रूप से शांत, अदभुत रूप से मानवी गुणों को उपलब्ध हो सकते हैं। क्योंकि आज हम जो भी कर रहे हैं गलत है, परिणाम भी गलत निकल रहे हैं।
विधायक रूप से बच्चों के जीवन में कुछ करने की चेष्टा की जो तो यह गुरुकुल है, वरना गुरुकुल नाम ही रह जाता है। जैसे और स्कूल हैं, वैसे ही यह भी स्कूल है। हो सकता है, आप इस पर चिंतन करेंगे, विचार करेंगे, कुछ रास्ता खोजेंगे तो बच्चों को तेजस्वी जीवन दिया जा सकता है कि सारे देश में गुरुकुल के बच्चे अलग से दिखाई पड़ें। गुरुकुल के बच्चे यहां की खबर ले जावें, यहां की हवा ले जावें, यहां की सुगंध ले जावें और जहां जावें वहां यह स्पष्ट प्रतीति हो कि इन्होंने जीवन दृष्टि और तरह की पाई है, इन्होंने और तरह का व्यक्तित्व पाया है।
इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप में से दो चार डाक्टर हो जाएंगे। बहुत डाक्टर हैं दुनिया में, उससे क्या फर्क पड़ने वाला है। तुममें से दो चार इंजीनियर हो जावेंगे, दो चार युरोप चले जाएंगे। इससे फर्क पड़ने वाला है? लौट कर आएंगे तो और शोषण करेंगे, और उपद्रव करेंगे, समाज का और पैसा छीनेगा और कुछ नहीं करेंगे। यह कोई मूल्य की बात नहीं कि हमारे गुरुकुल से इतने डाक्टर होगे, इतने इंजीनियर होगे, इतने मिनिस्टर हो गए। क्या मिनिस्टर होना बहुत अच्छी बात है? रोज मिनिस्टर को देखते हो और फिर भी ऐसा सोचते हो तो अंधे हो। राजनीतिज्ञों के कारण ही तो मनुष्यता संकट में है। राजनीतिज्ञों के कारण ही दुनिया युद्धों में है। सो इस बात का बिल्कुल गौरव मत मानना कि तुम्हारे गुरुकुल से कोई बड़ा राजनीतिज्ञ पैदा हो गया है। इससे तो शर्मिंदा ही होना है। डाक्टर और इंजीनियर तो फिर भी ठीक है, यह मिनिस्टर तो बिल्कुल भी ठीक नहीं है। मैं तो चाहूंगा कि तुम इतने अच्छे आदमी बनना कि तुम में से कोई भी मिनिस्टर न होना चाहे।
महत्वाकांक्षा तो रोग है और वह केवल उनमें ही जड़ पकड़ता है जो कि स्वयं में हीन ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। महत्वाकांक्षा भी विक्षिप्तता का एक प्रकार है। स्वस्थ चित्त व्यक्ति महत्वाकांक्षी नहीं होता है। शिक्षा सम्यक हो तो जीवन में महत्वाकांक्षा का कोई स्थान न होना चाहिए। जीओ--गहरा से गहरा जीवन जीओ। लेकिन पद पर यश के लिए जो जीता है, वह जो गहरा कभी भी नहीं जी पाता है। वह तो अत्यंत उथले में जीता है। उसका कोई जीवन थोड़े ही है। वह तो महत्वाकांक्षा से खींचा जाता है। जीवन उसका एक शांति और आनंद नहीं बल्कि एक तनाव और पीड़ा है। इसलिए कितने महत्वाकांक्षी पागल पैदा किए गए, इससे गुरुकुल की प्रतिष्ठा बढ़ने वाली नहीं है। यह एक धर्म प्रतिष्ठान है, इसके लिए कोई और गौरव निर्मित करें। यह एक आदर की बात होगी कि गुरुकुल से निकला हुआ विद्यार्थी महत्वाकांक्षी न हो, पदाकांक्षी न हो, धनाकांक्षी न हो तो हम कह सकते हैं हमारे गुरुकुल से निकला हुआ विद्यार्थी महत्वाकांक्षी न हो, पदाकांक्षी न हो, धनाकांक्षी न हो तो हम

कह सकते हैं कि हमारे गुरुकुल से निकला विद्यार्थी विक्षिप्त नहीं है, स्वस्थ चित्त है।
बच्चों को महत्वाकांक्षा नहीं, प्रेम सिखाइए। बच्चों को प्रथम आने की दौड़ में मत लगाइए। बच्चों को अंतिम खड़ा होने की सामर्थ्य और बल सिखाइए। क्राइस्ट ने कहा है: धन्य हैं वे लोग, जो अंतिम खड़ा होने में समर्थ हैं। उन लोगों को धन्य नहीं कहा जो प्रथम खड़े हो जाते हैं। क्राइस्ट ने उन लोगों को धन्य कहा है जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। गुरुकुल तो वह होगी कि बच्चे को हम यह सिखो कि वह सब भांति के पागलपनों में दूर पीछे खड़े रहने में समर्थ हों। वह प्रेम में इतना आगे हो कि प्रतिस्पर्धा में पीछे खड़ा हो सके। लेकिन हम तो प्रतिस्पर्धा सिखाते हैं, प्रेम नहीं, और तब यदि हमारी सयता रोज युद्धों में पड़ जाती हो तो आश्चर्य नहीं। शायद हम सोचते हैं कि बिना स्पर्धा के तो कुछ सिखाया ही नहीं जा सकता है, लेकिन यह भूल है। स्पर्धा का ज्वर पैदा करके जो सिखाया जाता है, वह सब घातक है, क्योंकि फिर वह ज्वर जीवन भर नहीं उतरता है। सहयोगियों से स्पर्धा नहीं, वरन जो सिखाया जा रहा है, उसके प्रति प्रेम और आनंद पैदा करें। संगीत साथियों से स्पर्धा में भी सीखा जा सकता है और संगीत के प्रेम में भी। ऐसे ही गणित भी और ऐसे ही शेष सब कुछ निश्चय ही संगीत से प्रेम में भी एक स्पर्धा होगी, लेकिन वह स्वयं से ही होगी। वह होगी स्वयं को ही निरंतर अतिक्रमण करने की। मैं जहां आज हूं वहां कल मैं न रहूं। मैं जहां कल था, वही आज भी न ठहरा रहूं। ऐसी आत्मस्पर्धा शुभ है। लेकिन दूसरों से जो प्रतियोगिता है, वह जीवन को बहुत दुखों और तनावों में ले जाती है, क्योंकि उस सारी दौड़ का केंद्र अहंकार है और अहंकार नर्क का मार्ग है।
लेकिन अभी तो सभी भांति परोक्ष अपरोक्ष अहंकार ही सिखाया जाता है। वह देखो--दीवाल पर क्या लिखा है? लिखा है: राजा तो केवल अपने ही देश में लेकिन विद्वान सर्वत्र पूजता है। इसका क्या अर्थ है, क्या प्रयोजन है? निश्चय ही एक ही अभिप्राय है कि विद्वान बनो। लेकिन क्या पूजने की, पूजा पाने की इच्छा कोई शुभेच्छा है? इस भांति त्याग की शिक्षा भी दी जाती है। त्यागी बनो क्योंकि त्यागी पुजता है। लेकिन जो पूजना चाहता है क्या वह ज्ञानी या त्यागी हो सकता है? पूजा जाने की इच्छा तो अत्यंत गहरे अज्ञान और मूढ़ता से उत्पन्न होती है। वह तो निपट अहंकार है। और अहंकार से बड़ा न दुख है न दारिद्रय है, न दुर्भाग्य है।
सम्यक शिक्षा अहंकार से मुक्तदायी होनी चाहिए। क्या यह गुरुकुल ऐसे बच्चे पैदा नहीं करेगा जो निर-अहंकारी हों? यह एक बात ही हो सके तो जीवन में क्रांति हो जाती है। क्या हम ऐसे बच्चे तैयार नहीं कर सकते हैं जो सरल हों, सहज हों और जिन्हें जीवन में--दैनंदिन जीवन में आनंद हो? परमात्मा के सौंदर्य को जानने में उसके संगीत को अनुभव करने में केवल वे ही सफल हो सकते हैं जो कि सहज और सरल हैं।
मैं बहुत आशाओं से भरा हुआ आपसे विदा लेता हूं। मनुष्य तो अनगढ़ पत्थरों की भांति है। मैं अभी यहां की गुफाओं से लौटा हूं। उन पत्थरों को सृष्टा कारीगर मिल गए इसलिए वे साधारण से पोषण प्रतिमाएं बन कर अप्रतिम सौंदर्य को उपलब्ध हो गए हैं। प्यारे बच्चो, तुम्हारा जीवन भी ऐसे ही सौंदर्य को प्राप्त कर सकता है। लेकिन तुम्हें अपना सृष्टा बनना होगा। निश्चय ही तुम्हारे शिक्षक, तुम्हारा गुरुकुल, तुम्हारे मां-बाप इसमें बहुत सहयोगी हो सकते हज, लेकिन फिर भी अंतिम जिम्मेवारी तो तुम पर ही है। मनुष्य के निर्माण में वह स्वयं ही पत्थर है और स्वयं ही कारीगर और स्वयं ही वे उपकरण, जिनसे कि एक पाषाण प्रतिमा में परिवर्तित होता है।

प्रेम है द्वार प्रभु का तीसरा प्रवचन

आनंद खोज की सम्यक दिशा
(Note- Only First Question-Answer is compiled in Book- Prem Hai Dwar Prabhu Ka #3. Complete discourse is compiled in book- Jeewan Darshan #2.)

अनेक लोगों के मन में यह प्रश्न उठता है कि जीवन में सत्य को पाने की क्या जरूरत है? जीवन इतना छोटा है उसमें सत्य को पाने का श्रम क्यों उठाया जाए? जब सिनेमा देख कर और संगीत सुन कर ही आनंद उपलब्ध हो सकता है, तो जीवन को ऐसे ही बिता देने में क्या भूल है?
यह प्रश्न इसलिए उठता है, क्योंकि हमें शायद लगता है कि सत्य और अलग अलग हैं। लेकिन नहीं, सत्य और आनंद दो बातें नहीं हैं। जीवन में सत्य उपलब्ध हो तो ही आनंद उपलब्ध होता है। परमात्मा उपलब्ध हो तो ही आनंद उपलब्ध होता है। आनंद, सत्य या परमात्मा एक ही बात को व्यक्ति करने के अलग अलग तरीके हैं। तब इस भांति न सोचें कि सत्य की क्या जरूरत है? सोचें इस भांति कि आनंद की क्या जरूरत है? और आनंद की जरूरत तो सभी को मालूम पड़ती है, उन्हें भी जिनके मन में इस तरह के प्रश्न उठते हैं। संगीत और सिनेमा में जिन्हें आनंद दिखाई पड़ता है उन्हें यह बात समझ लेना जरूरी है कि मात्र दुख को भूल जाना ही आनंद नहीं है। सिनेमा, संगीत या इस तरह की और सारी व्यवस्थाएं केवल देख को भुलाती हैं, आनंद को देती नहीं। शराब भी दुख को भूला देती है, संगीत भी, सिनेमा भी, सेक्स भी। इस तरह दुख को भूल जाना एक बात है और आनंद को उपलब्ध कर लेना बिल्कुल ही दूसरी बात है।
एक आदमी दरिद्र है और वह अपनी दरिद्रता को भूल जाए यह एक बात है, और वह समृद्ध हो जाए यह बिल्कुल ही दूसरी बात है। दुख को भूल जाने से सुख का भान पैदा होता है। सुख केवल दुख का विस्मरण (थवतहमज-थनसनमे) मात्र है। और आनंद? आनंद बात ही अलग है, वह किसी चीज का विस्मरण नहीं, स्मरण है। वह किसी बीज की उपलब्धि है, विधायक उपलब्धि। आनंद विधायक (ढवेपजपअम) है, सुख नकारात्मक (छंहंजपअम) है।
एक आदमी दुखी है। इस दुख को हटाने के दो उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि
वह जाए और संगीत सुने या किसी और चीज में इस भांति डूब जाए कि दुख की उसे याद ही न रहे। संगीत में इतना तन्मय हो जाए कि उसका चित्त दूसरी तरफ जाना बंद कर दे, तो उतनी देर को उसे दुख भूला रहेगा लेकिन इससे दुख मिटता नहीं है। संगीत से जैसे ही चित्त वापस लौटेगा, दुख अपनी पूरी ताकत से पुनः खड़ा हो जाएगा। जितनी देर वह संगीत में अपने को भूला था, उतनी दूर भीतर दुख सरक रहा था, संगृहीत हो रहा था। जैसे ही संगीत से मन हटेगा दुख अपने दुगुने वेग से सामने खड़ा हो जाएगा। अब उसे पुनः विस्मृत। करने के लिए किसी ज्यादा गहरे भुलावे की जरूरत पड़ेगी। तो फिर शराब है, और दूसरे रास्ते हैं जिनसे चित्त को बेहोश किया जा सकता है। लेकिन स्मरण रहे यह बेहोशी आनंद नहीं है। बल्कि सचाई तो यह है कि जो आदमी जितना ज्यादा दुखी होता है उतना ही स्वयं को भूलने का रास्ता खोजता है। दुख से ही यह पलायन निकलता है। दुख से ही कहीं डूब जाने की, भागने की और मूर्छित हो जाने की आकांक्षा पैदा होती है। दुख से ही लोग भागते हैं। सुख से तो कोई भागता नहीं। तो अगर आप यह कहते हैं कि जब मैं सिनेमा में बैठता हूं तो बहुत सुख मिलता है तो स्वभावतः ही प्रश्न उठता है कि जब आप सिनेमा में नहीं होते तब क्या मिलता होगा? तब निश्चित ही दुख मिलता होगा। यह इस बात की ही घोषणा है कि आप दुखी है। लेकिन सिनेमा में बैठ कर दुख मिट कैसे जाएगा? दुख की धारा तो भीतर सरकती रहेगी। हां, जितने ज्यादा आप दुखी होंगे सिनेमा में उतना ही ज्यादा सुख अनुभव होगा। जो सच में आनंदित है उसे तो शायद को सुख प्रतीत नहीं होगा। और ये जो हमारी दृष्टि है कि इसी तरह हम अपना पूरा जीवन क्यों न बिता दें-- मूर्च्छित होकर, भूल कर, तब तो उचित है कि एक आदमी जीवन भर सोया रहे सिनेमा की भी क्या जरूरत है? और अगर जीवन भर सोना कठिन है तो फिर जीने की भी क्या जरूरत है? मर जाए और जब में सो जाए तो सारे दुख भूल जाएंगे। इसी प्रवृत्ति

से आत्मघात की भावना पैदा होती है। सिनेमा देखने वाला, शराब पीने वाला और संगीत में डूबने वाला आदमी अगर अपने तर्क की अंतिम सीमा पर पहुंच जाए तो वह कहेगा: जीने की जरूरत क्या है? जीने में दुख है तो मरा जाता हूं। यह सब आत्मघाती (एनपबपकम) प्रवृत्तियां है। जब भी हम जीवन को भूलना चाहते हैं तभी हम आत्मघाती हो जाते हैं। लेकिन जीवन का आनंद उसे भूलने में नहीं उसकी परिपूर्णता में उसे जान लेने में है।
एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ। उसकी अनोखी शर्त हुआ करती थीं। एक राजमहल में वह अपना संगीत सुनाने को गया। उसने कहा कि मैं एक ही शर्त पर अपनी वीणा बजाऊंगा कि सुननेवालों में से किसी का भी सिर न हिले। और अगर कोई सिर हिला तो मैं वीणा बजाना बंद कर दूंगा। वह राजा भी अपनी ही तरह का था। उसने कहा वीणा रोकने की कोई जरूरत नहीं। हमारे आदमी तैनात रहेंगे और जो सिर हिलेगा वे उस सिर को ही काट कर अलग कर देंगे।
संध्यान सारे नगर में यह सूचना करवा दी गई कि जो लोग सुनने आए थोड़ा समझ कर आए, अगर संगीत सुनते वक्त कोई सिर हिला तो वह अलग करवा दिया जाएगा। लाखों लोग संगीत सुनने को उत्सुक थे। उतना बड़ा संगीतज्ञ गांव में आया था। सबको अपने दुख को भूलने का एक सुअवसर मिला था। कौन उसे चूकना चाहता? लेकिन इतनी दूर तक सुख लेने को कोई भी राजी न था। गर्दन कटवाने के मूल्य पर संगीत सुनने को कौन राजी होता? भूल से गर्दन हिल भी सकती थी। और हो सकता है सिर संगीत के लिए न हिला हो, मक्खी बैठ गई हो और गर्दन हिल गई हो या हो सकता है किसी और कारण से हिल गई हो। लोग जानते थे कि राजा पागल है और फिर बाद में इस बात की कोई सुनवाई न होगी कि गर्दन किसलिए हिली थी। बस गर्दन का हिलना ही काफी हो जाएगा। इसके बावजूद भी उस रात्रि कोई दो तीन सौ लोग संगीत सुनने गए। वे लोग जो जीवन खोने के मूल्य पर भी सूख चाहते थे वहां आए। वीणा बजी। कोई घंटे भर तक लोग ऐसे बैठे रहे जैसे मूर्तियां हों। लोगों ने जैसे डर के कारण सांस भी न ली हो। दरवाजे बंद करवा दिए थे ताकि कोई भाग न जाए। नंगी तलवारें लिए हुए सैनिक खड़े थे किसी की भी गर्दन एक क्षण में अलग की जा सकती थी।
घंटा बीता, दो घंटे बीते, आधी रात होने के करीब आ गई। फिर राजा हैरान हुआ, उसके सिपाही भी हैरान हुए, जो कि नंगी तलवारें लिए हुए खड़े थे। उन्होंने देखा दस-पंद्रह सिर धीरे-धीरे हिलने लगे। संख्या और बढ़ी। रात पूरी होते-होते कोई चालीस-पचास सिर हिलने लगे थे। वे पचास लोग पकड़ लिए गए। राजा ने उस संगीतज्ञ को कहा: इनकी गर्दन अलग करवा दें? उस संगीतज्ञ ने कहा : नहीं। मैंने शर्त बहुत और अर्थों में रखी थी। अब यही वे लोग हैं जो मेरे संगीत को सुनने के सच्चे अधिकारी हैं। कल सिर्फ ये लोग संगीत सुनने आ सकेंगे।
राजा ने उन लोगों से कहा: ठीक है कि संगीतज्ञ की शर्त का यह अर्थ रहा हो, लेकिन तुम्हें तो यह पता था पागलो! तुमने गर्दन क्यों हिलाई? उन आदमियों ने कहा: हमने गर्दन नहीं हिलाई, गर्दन हिल गई होगी। क्योंकि जब तक हम मौजूद थे गर्दन नहीं हिली, लेकिन जब हम गैर-मौजूद हो गए फिर हमें कोई पता नहीं। जब तक हम सजग थे, जब तक हमें होश था, हम गर्दन सम्हाले रहे। फिर एक घड़ी ऐसी आ गई जब हमें कोई होश नहीं रहा। हम संगीत में इतने डूब गए कि लगभग बेहोश ही हो गए। उस बीच फिर गर्दन हिली हो तो हमें कोई पता नहीं है। तो अब भला आप हमारी गर्दन कटवा लें लेकिन कसूरवार हम नहीं है। क्योंकि हम मौजूद ही नहीं थे। हम बेहोश थे। अपने होश में हमने गर्दन नहीं हिलाई। क्या इतनी बेहोशी संगीत से पैदा हो सकती है?
जरूर हो सकती है, मनुष्य के जीवन में बेहोशी के बहुत रास्ते हैं। जितनी इंद्रियां हैं उतने ही बेहोश होने के रास्ते भी हैं। प्रत्येक इंद्रिय का बेहोश होने का अपना रास्ता है। कान परध्वनियों के द्वारा बेहोशी लाई जा सकती है। अगर इस तरह के स्वर और इस तरह की ध्वनियां कान पर फेंकी जाए कि कान में जो सचेतना है वह सो जाए, शिथिल हो जाए--तो धीरे-धीरे कान तो बेहोश होगा ही उसके साथ ही पूरा चित्त भी सो जाएगा, क्योंकि इस हालत में कान के पास ही सारा मन एकाग्र और इकट्ठा हो जाएगा और जैसे कान में शिथिल आएगी उसके साथ ही पूरा चित्त भी शिथिल होकर बेहोश हो जाएगा। इसी तरह

आंखें बेहोश करवा सकती हैं। सौंदर्य को देखकर आंखें हो सकती हैं। और आंखें बेहोश हो जाए तो पीछे से पूरा चित्त बेहोश हो सकता है।
इस भांति अगर हम बेहोश हो जाए तो होश में लौटने पर लगेगा कि कितना अच्छा हुआ। क्योंकि इस बीच किसी भी दुख का कोई पता न था, कोई चिंता न थी, कोई कष्ट न था और कोई समस्या न थी। नहीं थी इसलिए क्योंकि आप ही नहीं थे। आप होते तो ये सारी चीजें होती। आप गैरमौजूद थे इसलिए कोई चिंता न थी, कोई दुख न था, कोई समस्या न थी। दुख तो था लेकिन उसे जानने के लिए जो होश चाहिए वह खो गया था। इसलिए उसका कोई पता नहीं चलता था। इसे, जो लोग आनंद समझ लेते हैं, वे भूल में पड़ जाते हैं। उनका जीवन बिना आनंद को जाने एक बेहोशी में ही बात जाता है और आनंद से वे सदा के लिए अपरिचित ही हर जाते हैं।
इसीलिए मैं कहता हूं कि सत्य की खोज की जरूरत है, क्योंकि उसके बिना आनंद की कोई उपलब्धि न किसी को हुई है और न हो सकती है। अब अगर कोई यही पूछने लगे कि आनंद की खोज की क्या जरूरत है तो थोड़ी कठिनाई हो जाएगी। हालांकि अब तक किसी आदमी ने वस्तुतः ऐसा प्रश्न पूछा नहीं है। दस हजार वर्षों में आदमी ने बहुत प्रश्न पूछे हैं, लेकिन किसी आदमी ने यह नहीं पूछा कि आनंद की खोज की जरूरत क्या है? क्योंकि इस बात को पूछने का अर्थ यह होगा कि हम दुख से तृप्त हैं। लेकिन दुख से तो कोई भी तृप्त नहीं है। अगर दुख से ही तृप्त होते तो फिर आप सिनेमा भी क्यों जाते? संगीत भी क्यों सुनते? वह आनंद की ही खोज चल रही है, लेकिन गलत दिशा में। गलत दिशा में इसलिए क्योंकि दुख को भूलने से आनंद उपलब्ध नहीं होता। हां, आनंद उपलब्ध हो जाए तो दुख जरूर विलीन हो जाता है। अंधेरे करके बैठ जाऊं और भूल जाऊं अंधेरे को, तो भी कमरा अंधेरा ही रहेगा। लेकिन हां, दिया मैं जला लूं तो अंधेरा जरूर विलीन हो जाएगा।
एक बात तय कि हम जो हैं, जैसे हैं, जैसे होने से तृप्त नहीं हैं। इसीलिए खोज की जरूरत है। जो तृप्त है उसे खाज की कोई भी जरूरत नहीं है। हम जो हैं उससे तृप्त नहीं हैं। हम जहां वहां से तृप्त नहीं हैं। भीतर एक बेचैनी है, एक पीड़ा है, जो निरंतर कहे जा रही है कि कुछ गलत है, कुछ गड़बड़ है। वही बेचैनी कहती है--खोजो! उसे फिर सत्य नाम दो, चाहे और कोई नाम दो उससे भेद नहीं पड़ता। संगीत में और सिनेमा में भी उसकी ही खोज चल रही है। लेकिन वह दिशा गलत और भ्रांत है। जब कोई आत्मा की दिशा में खोज करता है, तब ठीक और सम्यक दिशा में उसकी खोज शुरू होती है। क्योंकि दुख को भूलने से आज तक कोई आनंद को उपलब्ध हनीं हुआ है लेकिन आत्मा को जान लेने से व्यक्ति जरूर आनंद को उपलब्ध नहीं हुआ है, लेकिन आत्मा को जान लेने से व्यक्ति जरूर आनंद को उपलब्ध हो जाता है। जिन्होंने उस सत्य की थोड़ी सी झलक पा लीद है उनके पूरे जीवन में एक क्रांति हो जाती है। उनका सारा जीवन आनंद और मंगल की वर्षा बन जाता है। फिर वे बाहर संगीत में भूलने नहीं जाते क्योंकि उनके हृदय की वीणा पर स्वयं एक संगीत एक संगीत बजने लगता है। फिर वे बाहर सुख की खोज में नहीं भटकते हैं, क्योंकि उनके भीतर एक आनंद का झरना फूट जाता है।
जो भीतर दुखी है, वह बाहर सुख को खोजता है, लेकिन जो भीतर दुखी है वह बाहर सुख को कैसे पा सकेगा? जो भीतर आनंद से भर जाता है, उसकी बाहर सुख की खोज जरूर बंद हो जाती है, क्योंकि जिसे वह खोजता था वह तो उसे स्वयं के भीतर ही उपलब्ध हो गया है।
एक भिखारी एक बड़ी महानगरी में मरा। वह एक ही जगह पर बैठ भीख मांगता रहा। जिंदगी भर वही बैठकर एक-एक पैसे के लिए गिड़गिड़ाया। वहीं जीया और वहीं मरा भी। उसके मर जाने पर उसकी लाश को म्युनिसिपल कर्मचारी घसीट कर मरघट ले गए। उसके कपड़े चिथड़ों में आग लगा दी गई। लोगों ने सोचा--तीस साल तक उस भिखारी ने इस जमीन को खराब और अपवित्र किया है, क्यों न इस भूमि की थोड़ी सी मिट्टी को खुदवा कर फेंक दिया जाए? मिट्टी जब बदली गई तो वे हैरान हो गए। जहां वह भिखारी बैठा करता था वहीं एक बड़ा खजाना गड़ा मिला। वह उसी भूमि पर बैठकर, उसी खजाने को ऊपर बैठकर, तीस वर्षों तक एक-एक पैसे के लिए भीख मांगता रहा। उसे कोई कल्पना भी न थी कि जिस भूमि पर वह बैठता है वहां कोई खजाना भी हो सकता है।

यह किसी एक भिखारी की कहानी नहीं है, यह हर आदमी की कहानी है। हर आदमी जहां बैठा है, जहां एक-एक पैसे सके सुख के लिए गिड़गिडा रहा है, मांग रहा है और हाथ हीला रहा है, उसी जमीन में, उसके ही नीचे बहुत बड़े आनंद के खजाने गड़े हुए हैं। यह उसकी मर्जी है कि वह उन्हें खोजता है या नहीं, कोई उसे मजबूर नहीं कर सकता है।
अगर उस भिखमंगे को जाकर मैंने कहा होता--मित्र, गड़े हुए खजाने की खोज करो। और वह मुझसे कहता--क्या जरूरत है मुझे गड़े हुए खजाने की खोज की? भीख मांग लेता हूं और मजे से जीता हूं। मैं क्यों खोजूं? मैं तो ऐसे ही जिंदगी बिता दूंगा?
तो मैं उससे क्या कहता? कहता कि ठीक है मांगो भीख! लेकिन जो भीख मांग रहा है वह कहे कि मुझे खजाने की कोई जरूरत नहीं है तो वह पागल है। अगर जरूरत नहीं है तो भीख मांग रहा है?
सिनेमा और संगीत में सुख खोज रहा है और कहे कि आनंद की खोज की मुझे क्या जरूरत है? तो वह पागल है, नहीं तो फिर सिनेमा में, संगीत में, शराब में और सेक्स में किस की भीख मांग रहा है? किसको खोज रहा है?
हम भीख मांगने वाले लोग हैं और जब कोई हमें खजाने की खबर देता है तो हमें विश्वास नहीं आता क्योंकि जो एक-एक पैसे की भीख मांग रहा है उसे विश्वास ही नहीं हो सकता कि खजाना भी हो सकता है। भीख मांगने वाला खजाने पर विश्वास नहीं कर पाता। उसे खजाना मिल भी जाए तो वह यही सोचेगा कि कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं? उसे यह विश्वास ही नहीं आता है कि मैं भीख मांगने वाला और मुझे खजाना भी मिल सकता है! इसी बात को भुलाने के लिए वह कहना शुरू करता है कि जरूरत क्या है खजाने खोजने की? मैं तो अपनी भीख मांगने में मस्त हूं। मैं क्यों परेशान होऊं? छोटी सी जिंदगी मिली है, उसे मैं आनंद की खोज में क्यों गंवा दूं? अगर आनंद की खोज में भी जिंदगी गंवाई जाती है, तो फिर मैं यह पूछना चाहता हूं कि कमाई किस बात में की जाएगी?

प्रेम है द्वार प्रभु का चौथा प्रवचन

महायुद्ध या महाक्रांति

मनुष्य की आज तक की सारी ताकत जीने में नहीं, मरने और मारने में लगी है। पिछले महायुद्ध में पांच करोड़ की हत्या हुई। पहले महायुद्ध में कोई साढ़े तीन करोड़ लोग मारे गए। थोड़े से ही बरसों में साढ़े आठ करोड़ लोग हमने मारे हैं। लेकिन शायद मनुष्य को इससे कोई सोच विचार पैदा नहीं हुआ। हर युद्ध के बाद और नये युद्ध के लिए हमने तैयारियां की हैं। इससे यह साफ है कि कोई भी युद्ध हमें यह दिखाने में समर्थ नहीं हो पाया है कि युद्ध व्यर्थ हैं। पांच हजार वर्षों में सारी जमीन पर पंद्रह हजार युद्ध लड़े गए हैं। पांच हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध बहुत बड़ी संख्या है यानी तीन प्रति वर्ष हम करीब-करीब लड़ते ही रहे हैं। कोई अगर पांच हजार वर्षों का हिसाब लगाए तो मुश्किल से तीन सौ वर्ष ऐसे हैं जब लड़ाई नहीं हुई। यह भी इकट्ठे नहीं, एक-एक, दो-दो दिन जोड़कर। तीन सौ वर्ष छोड़कर हम पूरे वक्त लड़ते रहे हैं। या तो मनुष्य का मस्तिष्क विकृत है या युद्ध हमारा बहुत बड़ा आनंद है अन्यथा विनाश के लिए ऐसी विकृत है या युद्ध हमारा बहुत बड़ा आनंद है अन्यथा विनाश के लिए ऐसी आतुरता और मृत्यु के लिए ऐसी गहरी आकांक्षा को समझना कठिन है। जरूर कुछ गड़बड़ हो गई है। लेकिन आज कुछ गलत हो गया ऐसा समझने का कोई कारण नहीं है। सदा से कुछ बड़बड़ है। कोई यह कहता हो कि पहले आदमी बहुत अच्छा था तो भूल भरी बातें कहता है।
आदमी सदा से ऐसा है। ताकत इतनी उसके हाथ में नहीं थी इसलिए इतने विकराल रूप में वह प्रकट नहीं हो सका था। आज उसे मौका मिला है। विज्ञान ने शक्ति दे दी है हाथ में। अब पूर्ण विनाश (ैंवजंस कमेजतनबंजपवद) हो सकता है, अब हम पूरी तरह विनाश कर सकते हैं। इरादे तो हमारे बहुत दिन से थे कि हम पूरी तरह विनाश करें लेकिन थोड़े बहुत आदमियों को मार कर रुक जाते थे। हमारे साधन कमजोर थे। हिंसा करने का मन तो सदा से था लेकिन हिंसा करने की ताकत सीमित थी। आज तक हमारी असीमित है। आज हम सब कुछ कर सकते हैं। कोई पचास हजार उदजन बम तैयार है और यह आंकड़ा पुराना है¬1960 का। इस बीच आदमी ने बहुत विकास किया है। गंगा में बहुत पानी बह गया है। उदजन बमों की संख्या और बड़ी हो गयी होगी। वैसे पचास हजार उदजन बम जरूरत से ज्यादा हैं इस पूरी पृथ्वी को नष्ट करने के लिए, बहुत ज्यादा हैं। अगर इस तरह की सात जमीनें नष्ट करनी हों तो भी काफी हैं। तीन अरब आदमियों को मारने के लिए पचास हजार उदजन बम बहुत ज्यादा हैं। बीस अरब आदमी मारने हों तो भी उनसे मारे जा सकते हैं या यह भी हो सकता है कि एक आदमी को सात-सात दफा मारने का मन हो तो मारा जा सके। हमने अंतिम तैयारी पूर कर ली। कोई धोखा धड़ी न हो जाए, कोई भूल-चूक न हो जाए, एकाध दफा मारें और आदमी न मर पाए तो ऐसे व्यवस्था कर ली गयी है कि एक बार, दो बार, सात बार मारा जाए ताकि कोई भी नहीं बच पाए। वैसे आदमी को दो बार नहीं मारना पड़ता। लेकिन फिर भी समय और वक्त को ख्याल में रखकर हमने इतना इंतजाम किया है कि हम हर आदमी को सात बार मार सकते हैं।
किसलिए यह तैयारी है? किसलिए यह आयोजन है? जरूर आदमी के मन में कोई पागलपन है, कोई विक्षिप्तता (टदेंदपजल) है। असल में आदमी विक्षिप्त न हो तो मिटाने की आकांक्षा पैदा नहीं होती। पागल का मन तोड़ने का होता है, स्वस्थ मन निर्मित करना चाहता है, सृजन करना चाहता है, कुछ बनाना चाहता है, जीवन को विकसित करना चाहता है। पागल का मन तोड़ना चाहता है, मिटाना चाहता है। क्यों? पागल होता है भीतर दुखी। अपने दुख का बदला वह सबसे लेना चाहता है। भीतर आदमी दुखी होता है तो वह दूसरे को दुखी करना चाहता है। वह दुख में हैं तो वह किसी को भी सुख में देखने में असमर्थ है। वह दुख में है, तो वह जो भी करेगा उससे परिणाम में दूसरे को दुख मिलेगा क्योंकि जो मेरे पास है, वही मैं दे सकता हूं। जो मेरे पास नहीं है उसे मैं नहीं दे सकता। चाहे मैं कहूं कि मैं सेवक हूं, मैं समाज का सुधारक हूं लेकिन अगर मैं भीतर दुखी हूं तो मेरी सेवा आपके गले में बोझ हो जाएगी और अगर मैं दुखी हूं तो मेरा सुधारा खतरनाक सिद्ध होगा। चाहे मैं यह कहूं मैं विश्व शांति के लिए

कोशिश करता हूं लेकिन अगर मैं दुखी हूं तो मेरी शांति की सारी कोशिश युद्ध लाएगी।
सारे राजनीतिज्ञ मिलकर दुनिया में युद्ध लाते हैं लेकिन कहते हैं हम शांति के लिए लड़ रहे हैं। आज तक जमीन पर कोई राजनीतिज्ञ ऐसा नहीं हुआ जिनसे यह कहा कि हम युद्ध के लिए युद्ध करते हैं। सभी राजनीतिज्ञ यह कहते हैं कि शांति के लिए युद्ध करते हैं। सभी यह कहते हैं कि आदमी अच्छा हो सके, जीवन सुखी हो सके इसलिए हम लड़ते हैं। असल में जो भीतर दुखी है, वह जो भी करेगा उसका परिणाम शुभ और मंगलदायी नहीं हो सकता। है। हम सब दुखी हैं और हम सब पीड़ित हैं। दुखी आदमी एक ही सुख जानता है¬दूसरे को दुख देने का सुख, और कोई सुख नहीं जानता। हम जिन सुखों को सोचते हैं कि इनसे तो किसी के दुख का कोई संबंध नहीं, वे भी किसी के दुख पर खड़े होते हैं।
मेरे एक मित्र हैं। एक गांव में उन्होंने मकान बनाया है। उन गांव में सबसे बड़ा मकान उन्हीं का था। वे बड़े सुखी थे अपने मकान को लेकर। फिर अभी कोई एक और आदमी ने आकर उनके पड़ोस में ही और बड़ा मकान बना दिया और वे दुखी हो गए। उनका मकान उतना का उतना है। मैं इस बार उनके घर में मेहमान था तो वे दुखी थे और कह रहे थे कि मुझे बड़ा मकान बनाना अब जरूरी है। मैंने कहा, आपका मकान उतना का उतना है, आप अप्रसन्न क्या हैं? आपके मकान को तो पड़ोसी की छाया भी नहीं है? लेकिन पड़ोस में एक बड़ा मकान हो गया तो वह दुखी हो गए। तो मैंने उनसे कहा कि अब समझ लें कि जब आप सुखी थे तो आप अपने मकान के कारण सुखी नहीं थे, पास में जो झोपड़े हैं, उनके कारण सुखी रहे हैं।
वह जो झोपड़े वाले को हमने दुख दिए हैं, बड़ा मकान बनाकर, वह है हमारा सुख। बड़ा मकान हमें कोई सुख नहीं दे रहा है क्योंकि उससे बड़ा मकान खड़ा हो जाता है हम सुखी हो जाते हैं। एक छोटा सा बच्चा भी अपनी कक्षा में प्रथम आ जाता है तो कोई यह न सोचे कि उसे प्रथम आने में सुख मिला है। तीस लोगों को पीछे छोड़ देने का जो दुख दिया है, उसका सुख आता है और कोई सुख नहीं। अगर वह अकेला हो अपनी कक्षा में तो पहला नंबर पास होगा लेकिन वह सुखी नहीं होगा लेकिन तीस बच्चों को जब वह पीछे छोड़ देता है तो सुखी हो जाता है।
हमारा सारा जीवन, चूंकि हम दुखी हैं इसलिए ईर्ष्या के सिवाय और हम कोई सुख नहीं जानते हैं। और अगर सारी जमीन पर सारे लोग दूसरे को दुखी करने में ही सुख जानते हों तो यह जमीन अगर नर्क हो जाए तो इसमें आश्चर्य क्या है। यह जमीन नर्क हो गयी है। सब कुछ है हमारे पास कि हम स्वर्ग बना सकते थे। लेकिन आदमी हमारा रुग्ण है इसलिए हमने नर्क बना लिया है। आज जितना हमारे पास है, मनुष्य के पास कभी नहीं था। आज जितनी शक्ति और संपदा हमारे पास है, आदमी के पास कभी भी नहीं थी लेकिन आदमी है रुग्ण इसलिए जो कुछ हमारे पास है वही हमारा शत्रु सिद्ध हो रहा है। और यह संभावना है कि हो सकता है दस पांच वर्षों से ज्यादा हमारे जीवन की उम्र भी न हो। एक भी राजनीतिज्ञ का दिमाग खराब हो जाए तो सारी दुनिया के नष्ट होने के करीब हम खड़े हैं। और राजनीतिज्ञ के दिमाग खराब होने में अड़चन नहीं है क्योंकि जिसका दिमाग खराब नहीं होता है वह कभी राजनीति में जाता ही नहीं। किसी भी एक का दिमाग खराब हो जाए तो आज उस एक आदमी के हाथ में इतना खतरा है कि यह सारी दुनिया मनुष्य जाति को डूबा दे। मनुष्य जाति को ही नहीं, सारे कीड़े मकौड़ो को, पशु पक्षियों को, पौधा को, सबको नष्ट कर दे।
हमारे पास जो ताकत है, आप उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। उदजन बमों
के विस्फोट से इतनी गर्मी पैदा होगी जितनी सूरज पर है। सूरज जमीन पर उतर आए तो क्या होगा? सौ डिग्री पर पानी उबलता है और आपको उसमें डाल दें तो कैसा जी होगा? लेकिन सौ डिग्री कोई गर्मी है? 1500 डिग्री गर्मी पर लोहा पिघलकर पानी हो जाता है। आपको 1500 डिग्री गर्मी में डाल दिया जाए आप बचेंगे? 2500 डिग्री पर लोहा भी भाप बनकर उड़ने लगता है लेकिन 2500 डिग्री भी कोई गर्मी नहीं है। उदजन बम के विस्फोट से जो गर्मी पैदा होती है, वह होती है, दस करोड़ डिग्री। उस दस करोड़ डिग्री की गर्मी में क्या बचेगा? जीवन के बचने की कोई भी संभावना नहीं है। किसी प्रकार का जीवन नहीं बचेगा। यह हमारे हाथ में है और चित्त हमारा दुखी, बेचैन और परेशान है और हम जो भी करते हैं उससे यह बेचैनी कम नहीं होती। यह बढ़ती चली जा रही है। हम जो भी कर

रहे हैं उससे हमारा दुख भी कम नहीं होता है, वह भी बढ़ता चला जा रहा है। शायद हमें यह दिखायी ही नहीं पड़ता है कि दुख के पीछे क्या है? शायद हमें यह भी नहीं दिखायी पड़ता है कि कौन से मूल कारण है जो हमें इस पीड़ा में दौड़ाए चले जा रहे हैं। शायद हमें ख्याल में भी न हो कि इस सबके पीछे किन बातों का हाथ है।
और अगर वे बातें दिखायी न पड़े तो हम जो भी करेंगे, हम चाहे सेवा करें, चाहे स्कूल खोलें, चाहे मरीजों के लिए अस्पताल खोलें, सब बेकार हैं, क्योंकि दूसरी तरफ हम जो कर रहे हैं, उससे हमारे अस्पताल रखे रह जाएंगे, हमारी सेवाएं रखी रह जाएंगी। हिरोशिमा में जिस दिन एटम गिरा, एक छोटा सा बच्चा अपने स्कूल का बस्ता लेकर पढ़ने के लिए घर की सीढ़ियां चढ़ रहा था। होम वर्क करना होगा उसे और एटम बम गिर गया। वह वहीं सूख कर दीवाल में चिपक गया। अपने बस्ते और किताबों के साथ राख हो गया। मुझे किसी मित्र ने तस्वीर भेजी उसकी। हमारे बच्चे जिनके लिए हम स्कूल खड़े कर रहे हैं, हमारे बीमार जिनके लिए हम अस्पताल बना रहे हैं, हमारे करीब जिनके लिए हम गरीबी दूर करने की कोशिश में लगे हुए हैं, हमारे खेत जिनकी हम उत्पादकता बढ़ा रहे हैं, हमारी फैक्टरियां, जिनमें हम आदमियों के लिए सामान बना रहे हैं, सब बेकार हैं क्योंकि दूसरी तरफ आदमी तैयारी कर रहा है कि इन सबको वह खाक कर दे, राख कर दे, और ये दोनों काम हम कर रहे हैं। बड़े स्वविरोध (एमसि बवदजतंकपबजपवद) में हम हैं। एक आदमी घर में बगिया भी लगा रहा है और दूसरी तरफ से आगे भी लगा रहा हो और यह भी ख्याल करता हो कि बगिया को सींचूं और फूल आएंगे और एक तरफ से आग भी लगा रहा हो उसी मकान में तो उस आदमी को हम पागल नहीं तो और क्या कहेंगे? उससे कहेंगे कि बगिया में बेकार मेहनत कर रहे हो जब कि दूसरी तरफ से आग भी लगाए जा रहे हो।
लेकिन हम सारे लोग भी यही कर रहे हैं और हमको दिखायी नहीं पड़ता है और हमको दिखायी भी नहीं पड़ेगा क्योंकि हमने कुछ ऐसी जड़ताएं पाल ली हैं अपने मन में कि दिखायी नहीं पड़ कसता। ये इतने झंडे लगे हुए हैं। हमारा झंडा सबसे ऊपर है। यह पागलपन का लक्षण है, यह युद्ध का कारण है। हमने अभी प्रार्थना की है कि हम अपने झंडे को सब राष्टरें में ऊपर रखेंगे। सब राष्ट यही प्रार्थनाएं कर रहे होंगे। फिर क्या होगा अगर हम अपने झंडे को ऊंचा रखना चाहते हैं और दूसरा भी अपने झंडे को ऊंचा रखना चाहता है और तीसरा भी? यह हमारा अहंकार नहीं तो और क्या है कि हमारा झंडा ऊंचा रहे। व्यक्ति का अहंकार होता है, कौन का अहंकार होता है, राष्ट का अहंकार होता है कि मेरा राष्ट ऊंचा रहे। क्यों रहे आपका राष्ट का अहंकार होता है कि मेरा राष्ट ऊंचा रहे। क्यों रहे आपका और दुनिया का जिस दिन राजनीतिज्ञों से छुटकारा हो जाएगा उस दिन वहां कोई राष्ट भी नहीं होगा। राजनीतिज्ञ बड़ी बीमारी है, उसी की बाई प्रोडक्ट राष्ट है, वह उसी से पैदा हुई बीमारी है। जब एक राष्ट कहेगा कि मैं हूं ऊपर, और दूसरा राष्ट कहेगा मैं हूं ऊपर, मैं बड़ा हूं, मैं जगत का गुरु हूं और यही जमीन है जहां भगवान जन्म लेते हैं और यही जमीन है जहां सबसे ऊंचे लोग पैदा होते हैं अगर ये ही बेवकूफिया जारी रहेगी तो मनुष्य युद्ध से बच नहीं सकता है। यह सारा पागलपन है।
व्यक्ति का अहंकार तो हमें दिखायी पड़ता रहा है और हम एक एक आदमी से कहते हैं कि अहंकारी मत बनो, विनम्र बनो। लेकिन राष्टीय अहंकार हमें आज तक भी दिखाई नहीं पड़ता और जब तक राष्टीय अहंकार हमें दिखायी नहीं पड़ेगा, तब तक हम युद्धों से बच नहीं सकेंगे। आज तक जमीन इसीलिए युद्धों से परेशान रही है कि अब तक हम राष्टीय अहंकार से बचने में समर्थ नहीं हुए हैं। वह हमको दिखायी भी नहीं पड़ता। दिखायी नहीं पड़ने का भी कारण है। अगर कोई आदमी कहे कि मैं सबसे बड़ा आदमी हूं तो बाकी बस के अहंकार को चोट लगेगी और सब उसके खिलाफ खड़े हो जाएंगे कि यह बड़ा गड़बड़ आदमी है, बीमार या पागल है¬कहता है कि सब से बड़ा मैं हूं। लेकिन हम सब कहते हैं कि हमारा राष्ट सबसे बड़ा है तो किसी के अहंकार को चोट नहीं लगती है क्योंकि हम सब एक राष्ट के लोग हैं। दूसरे राष्ट के लोगों को लगती होगी चोट वह हमारे सामने नहीं हैं। वह तो हमारे सामने तभी आते हैं जब युद्ध होता है। दो राष्ट आमने सामने युद्ध में खड़े होते हैं और कभी खड़े नहीं होते। हम सब के सामूहिक अहंकार को जो जो

उत्तेजना दी जाती है उससे हम सब सहमत होते हैं, बड़े प्रसन्न होते हैं। बिल्कुल ठीक कह रहे हैं कि भारत सबसे महान राष्ट है। हम सब खुश होते हैं क्योंकि हम सब के अहंकार को सामूहिक तृप्ति दी जा रही है। एक आदमी कह दे कि मैं बड़ा हूं तो हम झगड़ने को खड़े हो जाते हैं। वैसे हर आदमी अपने मन में कहता रहता है कि मैं बड़ा हूं।
गांधी इंग्लैंड गए थे गोलमेज काफ्रेंस में। उनके एक सेक्रेटरी ने बर्नार्ड शा से जाकर पूछा कि आप गांधी जी को महात्मा मानते हैं या नहीं? महात्माओं के शिष्यों को यह बड़ी फिकर होती है कि दूसरे लोग भी उनके महात्मा को महात्मा मानते हैं कि नहीं। तो बर्नार्ड शा से उनके सेक्रेटरी ने पूछा कि आप गांधी को महात्मा मानते हैं कि नहीं? बर्नार्ड शा ने कहा कि महात्मा वे जरूर हैं लेकिन नंबर दो हैं क्योंकि नंबर एक महात्मा तो मैं हूं। दुनिया में दो ही महात्मा हैं, एक मैं और एक गांधी, लेकिन गांधी नंबर दो हैं, नंबर एक मैं हूं।
वह बड़े दुखी हुए होंगे क्योंकि शिष्य बड़े दुखी होते हैं इन बातों से क्योंकि शिष्यों के अहंकार की तृप्ति इसी में होती है कि उनका महात्मा नंबर एक हो। उनका महात्मा नंबर दो हो तो शिष्य में महात्मा नंबर दो के शिष्य हो जाते हैं। वह दुखी वापस लौटे और उन्होंने महात्मा गांधी को कहा कि यह बर्नार्ड शा बड़ा अहंकारी मालूम होता है और बड़ा दंभी मालूम होता है। अपने ही मुंह से कहता है कि मैं नंबर एक हूं, आप नंबर दो हैं। गांधी ने कहा, वह बड़ा सीधा और सरल आदमी मालूम होता है। दिल में तो सभी के ऐसा होता है कि मैं नंबर एक हूं। कुछ लोग कह देते हैं, कुछ लोग कहते नहीं हैं। वह सीधा आदमी है।
हम सब के मन में यह होता रहता है कि मैं नंबर एक हूं और इस बात को सिद्ध करने के लिए जीवन में हजार उपाय करते हैं। बड़ा मकान बनाते हैं इसलिए ताकि बिना कहे लोग जान लें कि हम नंबर एक हैं। शानदार कपड़े पहनकर खड़े हो जाते हैं ताकि कहना न पड़े और दूसरे जान लें कि मैं नंबर एक हूं। हम जीवन भर यह कोशिश करते हैं कि बिना कहे पता चल जाए कि मैं नंबर एक हूं क्योंकि कहने से तो झगड़ा खड़ा हो जाता है। बिना कहे सबको पता चल जाए, जीवन की सारी दौड़ यही है। नंबर एक होने का सबका ख्याल है। एक मजाक अरब में प्रचलित है। अरब में कहा जाता है कि भगवान जब आदमियों को बनाता है और बना कर उनको जब दुनिया में भेजने लगता है तो हर आदमी से आकर कान में कह देता है, तुमसे अच्छा आदमी मैंने कभी बनाया ही नहीं। भगवान मजाक कर देता है हर आदमी के साथ, फिर हर आदमी जिंदगी भर मन ही मन में यह सोचता रहता है कि मुझ से कुछ अच्छा आदमी तो कोई है ही नहीं।
एक व्यक्ति का अहंकार रोग है, यह तो हमें दिखायी पड़ता है क्योंकि वह हमारे संघर्ष में आ जाता है लेकिन राष्टीय अहंकार भी रोग है, सांप्रदायिक अहंकार भी रोग है, जातीय अहंकार भी रो है, यह हमें दिखायी नहीं पड़ता है क्योंकि समूह में हम होते हैं और हमारी टक्कर नहीं होती। अगर एक जगह सभी लोग एक ही बीमारी से परेशान हो जाए तो वह बीमारी दिखायी पड़नी बंद हो जाएगी। पागलखानों में पागलों को ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि दूसरा आदमी पागल है या मैं पागल हूं। वह बिल्कुल ठीक मालूम पड़ते हैं, वे सभी एक ही बीमारी से जो ग्रस्त हैं।
एक बार ऐसा हुआ कि किसी गांव में एक जादूगर आया और उसने एक कुएं में एक पुड़िया डाल दी और कहा कि जो भी इसका पानी पीएगा वह पागल हो जाएगा। उस गांव में दो ही कुएं थे। एक गांव का कुआं था, एक राजा का कुआं था। राजा के कुएं से राजा पानी पीता था, उसका वजीर पानी पीता था, उसकी रानियां पानी पीती थीं। गांव के कुएं से पूरा गांव पानी पीता था। पागल हों या कुछ भी हों, पानी बिना पीए तो कोई रह भी नहीं सकता। थोड़ी देर रुके लेकिन सांझ होते होते सबको पानी पीना पड़ा। गांव भर पागल हो गया। सिर्फ राजा, वजीर और रानियां पागल नहीं हुए। लेकिन, गांव में यह खबर फैलने लगी कि ऐसा मालूम होता है कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। स्वाभाविक था। गांव सारा पागल हो गया था। जो पागल नहीं था वह पागल दिखायी पड़ने लगा। रात होते होते गांव में एक सभा हुई और गांव के सारे लोगों ने सोचा कि कुछ गड़बड़ हो गयी है, राजा

और वजीर पागल मालूम होते हैं। उनको बदले बिना ठीक न होगा। उनको बदल देना चाहिए। कोई और राजा बनाना चाहिए। उसके सिपाही भी पागल हो गए थे, उसके सैनिक भी, उसके पहरेदार भी, सभी पागल हो गए थे। उसके बचाव का भी कोई उपाय नहीं था। उसने अपने वजीर को कहा कि अब क्या किया जाए? वजीर ने कहा, एक ही रास्ता है, हम भी उसी कुएं का पानी पी लें। और राजा और वजीर भागे कहीं समय न चूक जाए। और उन्होंने जाकर उस कुएं का पानी पी लिया। उस रात उस गांव में जलसे मनाए गए, उन्होंने खुशियां बनायी, भगवान को धन्यवाद दिया कि राजा का दिमाग ठीक हो गया है।
सामूहिक से लोग पागल हो जाए तो किसी को दिखायी नहीं पड़ता। राष्टीय अहंकार सामूहिक पागलपन है इसलिए हमें दिखायी नहीं पड़ता। हम सभी उसी के बीमार हो गए हैं। जब कोई कहता है, महान देश है यह भारत वर्ष तो हमारे मन में यह यह ख्याल ही नहीं उठता है कि यह बड़ी पागलपन की बात कह रहा है। जब कोई कहता है, दुनिया का गुरु है हमारा देश तो हमें ख्याल ही नहीं उठता कि यह पागलपन की बात कह रहा है। जब कोई कहता है कि भगवान इसी भूमि को पवित्र मानते हैं तो हम बड़े प्रसन्न होते हैं कि यह बहुत ही अच्छी बात क्योंकि हम भी इसी भूमि में पैदा हुए हैं। और यह पागलपन सारी दुनिया के सभी लोगों को है। जमीन पर ऐसी कोई कौम नहीं है जिसको यह ख्याल न हो कि वह विशिष्ट है। जमीन पर कोई ऐसी कौन नहीं जिसे यह ख्याल न हो कि वह जो भी करती है, जो भी उसका जीवन है, वही श्रेष्ठ है।
पहले महायुद्ध में फ्रांस हारता चला जाता था। एक फ्रेंच जनरल ने एक अंग्रेज जनरल से पूछा कि क्या मामला है, हम हारते चले जाते हैं जर्मनी में? तुम किस भांति लड़ते हो, तुम्हारे लड़ने के ढंग क्या है? उस अंग्रेज जनरल ने कहा कि ढंग की तो बात छोड़ दो, जहां तक मैं समझता हूं भगवान हमारे पक्ष में हैं इसलिए हम जीतते हैं। उस फ्रेंच ने पूछा क्या भगवान हमारे पक्ष में नहीं हैं? उस अंग्रेज ने कहा कि आज तक तुम्हें पता है कभी अंग्रेजों को छोड़कर भगवान किसी और के पक्ष में रहा है? लेकिन फिर भी तुम ठीक से प्रार्थना करो तो शायद वह दयावान हो जाए और दयावान होने का एक कारण यह भी है कि तुम हमारे मित्र राष्ट हो। उस फ्रेंच ने कहा कि प्रार्थना तो हम हमेशा करते हैं। हमारी सैनिक टुकड़ियां भी युद्ध में जाने के पहले प्रार्थना करती हैं। उस अंग्रेज जनरल ने पूछा, किसी भाषा में प्रार्थना करते हो? भगवान अंग्रेजी के सिवाय कोई भाषा नहीं समझाता। हिंदुस्तानियों को भी यह भ्रम है कि संस्कृत जो है, देववाणी है। भगवान सिर्फ संस्कृत ही समझता है, लेकिन इस पर कभी आप हंसे थे जिंदगी में कि संस्कृत देववाणी है लेकिन कोई अंग्रेज कहे कि अंग्रेजी देववाणी है तो हमको हंसी आ जाती है। हमको है कि कैसी बेवकूफी है¬अंग्रेजी और देववाणी! लेकिन संस्कृत देववाणी है, इस पर कभी हंसे थे? नहीं, संस्कृत तो देववाणी है ही, उस पर हंसने की जरूरत क्या है? कौमें एक दूसरे के पागलपन पर हंसती हैं लेकिन अपने पागलपन पर नहीं हंसती। वह वक्त आ गया है कि हमें यह खोजना होगा, पहचानना होगा कि राष्टीय अहंकार कहीं रो तो नहीं है। यह रोग है। अगर यह बात स्पष्ट दिखायी दे सके कि यह राष्टीयता (छंजपवदंसपजल) रोग है, झंडे को ऊंचा रखने का ख्याल नासमझी है, अहंकार है, तो शायद हम एक नयी दुनिया के बनाने में समर्थ हो सकते हैं। शायद एक ऐसी दुनिया को बना सकें जहां कि राष्टीय अहंकार न हो, तो ही हम युद्ध के बाहर हो सकेंगे। और हमें क्यों इतना सुख मिलता है यह कहने में कि मैं बड़ा हूं आपसे, कभी इस पर भी सोचा है? चाहे व्यक्ति कहे, चाहे राष्ट कहे, सुख क्या है इसमें कि मैं आप से बड़ा हूं? जो आदमी दुखी होता है, वह इसी तरह की थोथी बातें कहकर सुख अनुभव करता है। एक भिखमंगा सड़क के किनारे बैठकर कहता है कि मेरे बाप बादशाह थे, नवाब थे। वह भीख मांगता है। इस बात को कह कर कि उसके पिता बादशाह थे, वह अपने भीख मांगने के दुख को छिपा लेता है।
अहंकार दुख को छिपाने की कोशिश है। जो आदमी दुखी नहीं होता वह अहंकारी भी नहीं होता। जो आदमी आनंदित होता है, वह यह नहीं कहता है कि मैं बड़ा हूं, मैं वह हूं। वह सिर्फ आनंदित होता है। उसे ख्याल भी नहीं आता है कि ये बातें कहने की हैं। यह सिर्फ दुखी और पीड़ित चित्त को ख्याल आते हैं

कि मैं यह हूं। तो जो कौम जितनी नीचे गिरती जाती है, वह उतनी अपने अहंकार में फूल-फूलकर समझाने की कोशिश करने लगते हैं। जितनी ज्यादा हीनता (टदमितपवतपजल) का ख्याल होता है उतना अहंकार की घोषणा करने की प्रवृत्ति आती है। अहंकार हीनता के भाव को छिपाने का उपाय है।
नादिरशाह आता था मुल्क जीतने के लिए। किसी ज्योतिषी से उसने पूछा,
में जीतने को जा रहा हूं। मेरे हाथ देखो, लक्षण देखो कि मैं आदमी कैसा हूं, मैं जीत सकूंगा या नहीं? उस ज्योतिषी ने कहा, तुम आदमी जरूर छोटे होगे क्योंकि जितने का ख्याल छोटे लोगों को ही पैदा होता है। उस ज्योतिषी को नादिर ने मरवा डाला। लेकिन यह बात इतनी सच्ची है कि किसी ज्योतिषी को मारने से मिट नहीं सकती। छोटे लोगों को जीतने का ख्याल पैदा होता है ताकि वह यह सिद्ध कर सकें अपने और दूसरों के सामने कि मैं छोटा नहीं हूं। तैमूरलंग चीन के जीतने गया। तैमूर लंगड़ा था। रास्ते में उसने एक मुल्क जीता। उस मुल्क के राजा को उसने हथकड़ियों में बंधवाकर बुलवाया। जब वह राजा हथकड़ियों में बंध कर सामने आया तो तैमूरलंग हंसने लगा। अपने सिंहासन पर बैठा हुआ था। उस राजा ने कहा, तैमूर हंसते हो तो बड़ी गलती करते हो। इस भूल में मत रहना कि तुमने आज मुझे जित लिया तो हमेशा जीतते चले जाएंगे, किसी दिन हारोगे भी। जो जीतता है वह किसी दिन हारता भी है। हंसो मत, क्योंकि जो किसी की हार पर हंसता है, एक दिन उसे अपनी हार पर आंसू बहाने पड़ते हैं। तैमूर ने कहा, मैं हंसा ही नहीं इस कारण से। मैं तो किसी और बात से हंसा। तैमूर लंगड़ा था। एक पैर उसका लंगड़ा था और जिस राजा को उसने जीता था वह काना था। उसकी एक ही आंख थी। उसने कहा, मैं तो इसलिए इंसा कि यह भगवान भी बड़ा अजीब है कि लंगड़े और काने को भी बादशाहत दे देता है। मैं इसलिए नहीं हंसा कि तुम हार गए। मैं तो इसलिए हंसा कि मैं हूं लंगड़ा और तुम हो काने। बड़ी अजीब बात है, लंगड़े और काने बादशाह हो जाते हैं। बात वहीं खत्म हो गयी लेकिन अगर मैं वहां मौजूद होता तो मैं तैमूर से कहता कि इसमें भगवान का कोई भी कसूर नहीं है। लंगड़ों और कानों के सिवाय बादशाहत कोई मांगता ही नहीं। इसमें भगवान का क्या कसूर?
यह हमारे भीतर जो लंगड़ापन और कानापन होता है, जो हीनता होती है, वह हमारी जिंदगी में एक बल बन जाती है, भागने का, दौड़ने का। हमें अपने को सिद्ध करना है दूसरों के सामने कि मैं लंगड़ा नहीं हूं, मैं काना नहीं हूं, मैं कुछ हूं। तो जितना लंगड़ा काना आदमी होता है, उतनी ज्यादा यह दौड़ तेज हो जाती है। जितनी हीन वृत्ति होती है उतनी महत्वाकांक्षा हो जाती है। फिर यह व्यक्तियों के तल पर भी होती है, राष्टरें के तल पर भी होती है। इसे थोड़ा समझना और इसको विदा करना जरूरी है।
राष्टरें का अहंकार जाना चाहिए और यह तभी जा सकती है, जब हमें दिखायी
पड़ जाए कि यह रोग हैं। हम तो इसे महिमा समझते हैं इस लिए यह टिका हुआ है। हम तो इसे गौर समझते हैं इसलिए टिका हुआ है। मैं तो कहूंगा, ऐसी प्रार्थना करें जो मनुष्य के लिए हों, राष्टरें के लिए नहीं। राष्टरें ने मनुष्यता को नष्ट किया है। आने वाला दिन राष्टरें का दिन नहीं हो सकता है। आने वाला दिन सारी मनुष्य जाति का इकट्ठा दिन होगा। वे लोग जो सोचते विचारते हैं, उन्हें ऐसी प्रार्थनाएं बंद कर देनी चाहिए जो टुकड़े के लिए हों। उन्हें तो पूरी अखंड मनुष्यता के लिए कोई चिंता करनी चाहिए। लेकिन हम सोचते भी नहीं हैं।
हम खड़े हुए हैं विश्व शांति के लिए और हमको पता नहीं है कि यदि प्रार्थना हम राष्ट के लिए करते हैं तो विश्व शांति कैसे होगी? ये दोनों बातें विरोधी हैं। राष्टरें को जो मानता है वह विश्व शांति के पक्ष में नहीं हो सकता है। विश्व शांति की जिसकी आकांक्षा होती है उसे राष्टरें को मानने की गुंजाइश नहीं है। पांच हजार वर्ष की कथा देखिए। उसमें आदमी की कथा क्या है? राष्टरें की कथा क्या है? क्या हुआ? अब भी हम उससे चिपके रहेंगे तो खतरा होगा, लेकिन शायद हमें बोध नहीं है, हमें ख्याल नहीं है। चीजें चलती जाती हैं, हम उनका अनुभव नहीं करते हैं। चले जाते हैं, न हम सोचते हैं, न हम विचारते हैं। सारी दुनिया खंडित खड़ी है। खंडित जहां भी होंगे वहां युद्ध होना बहुत आसान है।

हम हिंदुस्तान में युद्ध के लिए संग्राम शब्द का प्रयोग करते हैं। शायद आपको अभी ख्याल न हो कि संग्राम का अर्थ क्या है। संग्राम का अर्थ होता है, दो ग्रामों की सीमा। ग्राम का अर्थ गांव होता है संग्राम का अर्थ दो गांवों की सीमा होता है। बड़ी अजीब बात है कि जिसका अर्थ है दो गांवों की सीमा, उसका अर्थ युद्ध भी है। असल में जहां सीमा बटती है वही से युद्ध शुरू हो जाता है। जहां रेखा है वहां युद्ध है, जहां सीमाएं हैं, वहां युद्ध हैं और राष्ट सीमा बनाते हैं। सीमा युद्ध लाती है। सीमा युद्ध लाएगी। तो अगर चाहनी हो शांति, तो सीमा से ऊपर उठना होगा। असीम को स्वीकार करना होगा तो शांति आ सकती है।
जो सीमा को स्वीकार करता है वह कभी शांत नहीं हो सकता है। और हम सब तरह
से सीमाओं को स्वीकार किए हुए हैं। हजार हजार तरह की सीमाएं हमने स्वीकार की हैं, राष्टरें की सीमाएं, जातियों की सीमाएं, रंगों की सीमाएं, वर्णों की। आदमी की इतनी सीमाएं हमने बांध दी हैं कि आदमी करीब-करीब कारागृह में है। उसकी कोई स्वतंत्रता नहीं है। कारागृह में जो आदमी खड़ा है, वह ऐसी दुनिया नहीं बना सकता है जो कि शांत हो। इस आदमी को मुक्त करना होगा। इसका सारी सीमाओं को तोड़ना होगा। इसे थोड़ा असीम की तरफ ले चलना होगा। स्मरण रहे अहंकार सबसे खतरनाक सीमा है, तो जो असीम होने की तरफ जाता है, उसे अहंकार भी छोड़ देना होगा। एक छोटी सी कहानी मेरी बात को स्पष्ट कर देगी।
एक राजा का जन्मदिन था। कहते हैं उसने सारी जमीन जीत ली थी। अब उसके उसके पास जीतने को कुछ भी नहीं बचा था। उसने अपनी राजधानी के सौ ब्राह्मणों को भोजन पर आमंत्रित किया। वे उसके राज्य के सबसे विचारशील पंडित थे। जन्मदिन के उत्सव में उन्होंने भोजन किया और पीछे उस राजा ने कहा, मैं तुम्हें जन्मदिन की खुशी में कुछ भेंट करना चाहता हूं। लेकिन मैं कुछ भी भेंट करूं, तुम्हारी आकांक्षा से भेंट छोटी पड़ जाएगी। तुम न मालूम क्या सोचकर आए होगे कि राजा क्या भेंट करेगा। तो मैं जो भी भेंट करूंगा, हो सकता है, वह छोटी पड़ जाए इसलिए मैं तुम्हारे मन पर ही छोड़ देता हूं तुम्हारी भेंट। मेरे भवन के पीछे दूर-दूर तक श्रेष्ठतम जमीन है राज्य की। तुम्हें जितनी जमीन उसमें से चाहिए, वह ले लो। एक ही शर्त है, तुम्हें जितनी जमीन चाहिए, उतनी पहले तुम दीवाल बनाकर घेर लो, वह तुम्हारी हो जाएगी। जो जितनी जमीन घेरे लेगा, वह उसकी हो जाएगी।
ऐसा मौका कभी न मिला था और वह भी ब्राह्मणों को। वे ब्राह्मण तो खुशी
से पागल हो उठे। उन्होंने अपने मकान बेच दिए, अपनी धन संपत्ति बेच दी, सब बेचकर वे बड़ी दीवाल बनाने में लग गए। जो जितना उधार ले सकता था, मित्रों से मांग सकता था, सब ले आए थे। यह मौका अदभुत था। जमीन मुफ्त मिलती थी। राज्य की सबसे अच्छी जमीन थी। सिर्फ रेखा खींचनी थी, दीवाल बनानी थी। बड़ी बड़ी दीवालें उन्होंने बनाकर जो जितनी जमीन घेर सकता था घेर ली। एक ही कीमत पर मिलती थी जमीन कि सिर्फ घेर लोग और जमीन मिल जाएगी। तीन महीनों के बाद जबकि वह जमीन करीब-करीब घिरने के निकट पहुंच गयी थी, राजा घोषणा की कि मैं एक खबर और कर देता हूं जो सबसे ज्यादा जमीन घेरेगा उसे मैं राजगुरु के पद पर भी नियुक्त कर दूंगा। अब तो पागलपन और तेज हो गया। अब जिसके पास जो भी था, कपड़े लत्ते भी बेच दिए। उन ब्राह्मणों ने अपनी लंगोटियां लगा लीं क्योंकि कपड़े लते बेच कर भी चार ईंट आती थी तो थोड़ी जमीन और घिरती थी। वे करीब-करीब नंगे और फकीर हो गए। वे जमीन घेरने में पागल हो गए। आखिर समय पूरा हो गया। जमीन उन्होंने घेर ली। दिन आ गया और राजा वहां गया और उसने कहा कि मैं जांच कर लूं और राजगुरु का पद दे दूं। तो तुममें से जिसने ज्यादा जमीन घेरी हो, वह बताए। जो दावा करेगा उसकी जांच कर ली जाएगी। एक ब्राह्मण खड़ा हुआ। उसको देखकर बाकी ब्राह्मण हैरान रह गए। वह तो सबसे ज्यादा गरीब ब्राह्मण था। उसने एक थोड़ा सा जमीन का टुकड़ा घेरा था, शायद सबसे कम उसी की जमीन थी और वह पागल सबसे पहले खड़ा हो गया और उसने कहा, मेरी जमीन का निरीक्षण कर लिया जाए, मैंने सबसे ज्यादा जमीन घेरी है। मैं राजगुरु के पद पर अपने को घोषित करता हूं। राजा ने कहा, ठहरो! लेकिन उसने कहा, ठहरने की कोई जरूरत नहीं, मैं घोषित करता हूं। बाद में तुम भी घोषणा कर देना। चलो जमीन देख लो।

जब उसने दावा किया था तो निरीक्षण होना जरूरी था। सारे ब्राह्मण और राजा उसकी जमीन पर गए और देखकर ब्राह्मण हंसने लगे। पहले तो उसने थोड़ी सी दीवाल बनायी थी। मालूम होता था, रात में उसने दीवाल तोड़ दी थी, रात दीवाल भी न रही। राजा ने कहा, कहां है तुम्हारी दीवाल? उस ब्राह्मण ने कहा, मैंने दीवाल बनायी थी फिर मैंने सोचा, दीवाल कितनी ही बनाऊं जो भी घिरेगा वह छोटा ही होगा। फिर मैंने सोचा दीवाल गिरा दूं क्योंकि दीवाल कितनी ही बड़ी जमीन को घेरे भी जमीन आखिर छोटी ही होगी। घिरी होगी तो छोटी ही होगी। तो मैंने दीवाल गिरा दी है। मैं सबसे बड़ी जमीन का मालिक हूं। मेरी जमीन की कोई दीवाल नहीं है इसीलिए मैं कहता हूं कि मैं राजगुरु की जगह खड़ा हूं। राजा उसके पैर पर गिर पड़ा। उसने कहा, मुझे पहली दफा ख्याल में आया है
कि जो दीवाल गिरा देता है वह सबका हो जाता है, सबको मालिक हो जाता है। और जो दीवाल बनाता है वह कितनी ही बड़ी दीवाल बनाए तो भी जमीन छोटी ही घिर जाती है।
मनुष्य के चित्त पर बहुत दीवालें हैं, इनके कारण मनुष्य छोटा हो गया है। मनुष्य छोटा है इसलिए युद्ध है, अहंकार है। मनुष्य को बड़ा करना है तो उसकी सारी दीवालें गिरा देनी जरूरी है और जो लोग भी इन दीवालों को गिराने में लगे हैं वे ही लोग मनुष्यता की सेवा कर रहे हैं। आप स्कूल बनाए, अस्पताल खोलें इसमें कोई बहुत मतलब नहीं है; क्योंकि आप एटम बम भी बना रहे हैं। मनुष्यता की एक ही सेवा हो सकती है कि आप मनुष्य को दीवालों से मुक्त करें। हिंदू की, मुसलमान की, भारतीय की, पाकिस्तानी की, काले गोरे की दीवालों से जो मुक्त कर रहा है हर आदमी को, वही आज के क्षणों में मनुष्यता की सेवा कर रहा है। अगर ऐसे आदमी को जन्म दे सकें जिसके मन पर कोई दीवाल न हो तो शायद मनुष्यता के इतिहास में एक नए युग का प्रारंभ हो सकता है। आज तक मनुष्यता दुख, युद्ध और पीड़ा में रही है; अब या तो हम समाप्त होंगे या हमको बदलना होगा। या तो महायुद्ध होगा और हम समाप्त हो जाएंगे, या एक महाक्रांति आएगी और हमारे जीवन को बदल देगी।
आज दो ही तरह के लोग हैं जमीन पर¬वे लोग जो आगे वाले महायुद्ध को लाने
की तैयारी में लगे हैं, साथ दे रहे हैं या वे लोग जो आने वाली महाक्रांति के लिए श्रमरत हैं और सहयोग कर रहे हैं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, महायुद्ध में साथी मत बनना। उस महाक्रांति में जो मनुष्य के चित्त को दीवालों से मुक्त कर दें, अगर अपने सहयोग दिया तो ही मनुष्यता की सेवा हो सकेगी। आज एक ऐसी सेवा की जरूरत आ गई है जो कभी भी न थी। छोटी छोटी सेवाओं से कुछ भी न होगा। पूरा आकाश ही टूटने को आ गया है और आप अगर छोटे छोटे थेगड़े घर में लगाएंगे तो उससे कुछ भी होने को नहीं है। उस महान क्रांति की दिशा में चिंतन पैदा हुए बिना कुछ भी नहीं हो सकता है।

प्रेम है द्वार प्रभु का पांचवां प्रवचन

अंतर्यात्रा के सूत्र

परमात्मा को जानने के पहले स्वयं को जानना जरूरी है। और सत्य को जानने के पहले स्वयं को पहचानना जरूरी है। क्योंकि जो मेरे निकटतम है, अगर वही अपरिचित है तो जो दूरतम हैं, वह कैसे परिचित हो सकेंगे! तो इसके पहले कि किसी मंदिर में परमात्मा को खोजने जाए, इसके पहले कि किसी सत्य की तलाश में शास्त्रों में भटकें उस व्यक्ति को मत भूल जाना जो कि आप हैं। सबसे पहले और सबसे प्रथम उससे परिचित होना होगा जो कि आप हैं। लेकिन कोई स्वयं से परिचित होने को उत्सुक नहीं है। सभी लोग दूसरे से परिचित होना चाहते हैं। दूसरे से जो परिचय है, वही विज्ञान है, और स्वयं से जो परिचय है, वही धर्म है। जो स्वयं को जान लेता है, बड़े आश्चर्य की बात है, वह दूसरे को भी जान लेता है। लेकिन जो दूसरे को जानने में समय व्यतीत करता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है, दूसरे को तो जान ही नहीं पाता, धीरे-धीरे उसके स्वयं को जानने के क्षार भी बंद हो जाते हैं। ज्ञान की पहली किरण स्वयं से प्रकट होती है और धीरे-धीरे सब पर फैल जाती है। ज्ञान की पहली ज्योति स्वयं में जलती है और फिर समस्त जीवन में उसका प्रकाश, उसका आलोक दिखाई पड़ने लगता है।
जो स्वयं को नहीं जानता है, उसके लिए ईश्वर मृत है चाहे वह कितनी ही पूजा करे और कितनी ही अर्चनाएं, चाहे वह मंदिर बनाए, मूर्तियां बनाए और कुछ भी करे। एक काम अगर उसने छोड़ रखा है स्वयं को जानने का, तो जान लें कि परमात्मा से उसका कोई संबंध कभी नहीं हो सकेगा। परमात्मा से संबंध की पहली बुनियादी, आधारभूत शर्त है--स्वयं से संबंधित हो जाना। क्योंकि वही सूत्र है, वही सेतु है, वही मार्ग है, वही द्वार है, परमात्मा से संबंधित होने का। और तब जो परमात्मा प्रकट होता है वह मनुष्य द्वारा निर्मित परमात्मा की कल्पना नहीं है, बल्कि वही है जो है। तब वह हिंदू का परमात्मा नहीं है और मुश्किल का परमात्मा नहीं है, जैन का और ईसाई का नहीं है। तब वह बस परमात्मा है। उसका कोई रूप नहीं, नाम नहीं, उसका आदि नहीं, अंत नहीं। फिर उसकी कोई सीमा नहीं है। वैसा जो सत्य है जो हमें सब तरफ घेरे हुए हैं कैसे दिखाई पड़ेगा? यदि हम स्वयं को जाने बिना उसे देखने की दौड़ में पड़ गए तो वह दौड़ शुरू से ही भ्रांत होगी। और उस भ्रांति में हम जो भी जान लेंगे, वह हमारे अज्ञान को और गहन करेगा और सघन बनाएगा।
एक अंधा आदमी अपने एक मित्र के घर मेहमान था। मित्र ने उसके स्वागत में बहुत बहुत मिष्ठान्न बनाए। उस अंधे को कुछ पसंद आए। उसने पूछा यह क्या है? दूध से बनाई कोई मिठाई थी। उसके मित्रों ने कहा, दूध से बनी मिठाई है। उस अंधे आदमी ने कहा, क्या तुम कृपा करोगे और दूध के संबंध में मुझे कुछ समझाओगे, मुझे कुछ बताओगे कि यह दूध कैसा होता है? तो मित्रों ने वही किया जो तथाकथित ज्ञानी हमेशा से करते रहे हैं। वे उसको समझाने लग गए। एक मित्र कहा, दूध होता है शुद्ध सफेद बगुले के पंखों की भांति। वह अंधा आदमी बोला, मजाक करते हैं मुझसे आप? मैं तो दूध ही हनीं समझ पा रहा हूं। यह बगुला और उसके पंखे, एक और नई कठिनाई हो गई। क्या मुझे बताएंगे कि यह बगुला और उसके सफेद पंख कैसे होते हैं? तो मैं पहले बगुले को समझु, शुभ्रता को समझे तो दूध को समझा पाऊंगा। पहली समस्या तो वहीं रह गई, यह दूसरा प्रश्न खड़ा हो गया कि ये बगुले के सफेद पंख कैसे होते हैं? यह बगुला कैसा होता है? मित्र अचरज में पड़ गए। एक मित्र ने तरकीब निकाल। उसने अपना हाथ उठाया, अंधे का हाथ पकड़ा। कहा कि मेरे हाथ पर अपना हाथ फिराओ और कहा कि जिस तरह मेरा हाथ मुड़ा हुआ है उसी तरह बगुले की गर्दन मुड़ी हुई होती है। उस अंधे आदमी ने मुड़े हुए हाथों पर हाथ फेरा। वह उठकर नाचने लगा और बोला कि मैं समझ गया, मुड़े हुए हाथ की भांति दूध होता है। समाज गया कि दूध मुड़े हुए हाथ की भांति होता है। वे मित्र बहुत परेशान हो गए। इससे तो बेहतर था कि वे अंधे को न समझाते। क्योंकि यह जानना ही अच्छा था कि नहीं जानते हैं। यह जानना तो और खतरनाक हो गया कि दूध मुड़े हुए हाथ की भांति होता है।

जिन्होंने स्वयं की आंखें खोल कर नहीं देखा उनके हाथों में शास्त्रों
की यही गति हो जाती है, सिद्धांतों की यही गति हो जाती है। इसीलिए परमात्मा हमारे लिए मृत हो गया है। उसकी मृत्यु हो गई है। उसकी मृत्यु इसलिए हुई है कि हमारी आंखें बंद हैं। हम अंधे हैं। इसलिए परमात्मा को मरना पड़ा है। हमारे अंधेपन ने उसकी हत्या कर दी है। क्या तुम आंखें खोलने राजी हैं? जिनको प्रेम है जीवन से, सत्य से वे आंखें खोलने को राजी हों तो सारे जगत में परमात्मा का आलोक प्रकाशित हो सकता है। वे आंख कैसे खुलेंगी? स्वयं के द्वार जो बंद हैं उन्हें कैसे खोलेंगे? उसके कुछ सूत्र हैं। पहला सूत्र है ज्ञान नहीं बल्कि अज्ञान का बोध चाहिए। चित्त की एक ऐसी दशा चाहिए जहां हम स्पष्ट रूप से जानते हैं कि मैं कुछ भी हनीं जान रहा हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है। ऐसे अबोध की, अज्ञान की स्पष्ट स्वीकृति पहला सूत्र है ज्ञान को छोड़ना पड़ेगा। यदि वस्तुतः सम्यक और सत्य जो ज्ञान है उसे पाना है तो तथाकथित ज्ञान को छोड़ना पड़ेगा, मनुष्य के मन पर ज्ञान बहुत बोझिल है। पत्थरों और पहाड़ों की भांति उसकी छाती पर ज्ञान सवार है। हम सब कुछ जानते हुए मालूम होते हैं जब कि हम कुछ भी नहीं जानता है। इतना रहस्यपूर्ण है यह जगत! आपके द्वार पर जो पत्थर पड़ा है उसे भी आप नहीं जानते हैं। आपके आंगन में जो फूल खिलते हैं उनको भी नहीं जानते। कुछ भी तो हम नहीं जानते हैं। जीवन में इतना अज्ञात और इतना रहस्य भरा हुआ है लेकिन हमारा अहंकार कहता है कि हम कुछ जानते हैं। पिता का अहंकार कहता है कि तुम मेरे लड़के हो, मैं तुम्हें भलीभांति जानता हूं। लेकिन क्या पिता होने से ही कोई बेटे को जान जाता है? पिता एक मार्ग से ज्यादा क्या है? वह प्रभु, बेटे को दुनिया में लाने में द्वार बनता है, मार्ग बनता है। जैसे कोई एक चोर रास्ते से होकर गुजरे और लौटते वक्त चोर रास्ता कहने लगे कि--ठहरो! मैं तुम्हें भली भांति जानता हूं। क्योंकि थोड़ी देर पहले तुम मेरे पास से गुजरे थे तो इस चोर रास्ते को हम क्या कहेंगे? जब एक पिता अपने बच्चे को कहता है कि मैं तुम्हें भलीभांति जानता हूं तो क्या वह भी वैसी ही गलती नहीं कर रहा है?
जानने के इस भ्रम में ही, जीवन का जो रहस्य है उससे हम अपरिचित रह जाते हैं। हम सभी चीजों को जानते हुए मालूम पड़ते हैं। यह जानने का भ्रम टूटना चाहिए तो ही जीवन में रहस्य का जन्म होता है और अज्ञात के प्रति आंखें खुलनी शुरू होती है। ज्ञात के तट से जो मुक्त नहीं होता है, अज्ञात सागर की यात्रा उसके लिए नहीं है। परमात्मा बिल्कुल अज्ञात है और हम स्वयं बिल्कुल अज्ञात हैं। हमारे भीतर क्या है हम नहीं जानते। तो जो हम जानते हैं उसी को अगर पकड़े रहें तो इस अज्ञात में यात्रा नहीं हो सकेगी। हम ज्ञात से बंधे हैं।
जो जो हम जानते हैं उसी से हम बंधे हैं। किसीने एक शास्त्र पढ़ लिया है, गीता या कुरान या बाइबिल या कुछ और। किसी ने कुछ सुन लिया है किसी ने कुछ अनुभव कर लिया है और वह उससे बंधा है। जो ज्ञान से बंधता है वह अतीत से बंध जाता है। क्योंकि ज्ञान हमेशा बीते हुए (ढेंज) का होता है, जो हो गया है, बीत गया है। जो आपने जान लिया वह अतीत हो गया, जो जान लिया वह गया। वह मुर्दा हो गया। वह मर गया। उस मेरे हुए के साथ जो बंधा रहता है उसकी भविष्य में यात्रा कैसे हो सकेगी? वह आगे कैसे जाएंगे? ज्ञान तो हमेशा बीता हुआ है। जो भी आपने जान लिया वह गया। और परमात्मा है अनजाना (न्नदादवूद), अज्ञात। तो इस जाने हुए से अगर हम बंध गए तो उस अनजाने को कैसे जान सकेंगे? इसलिए ज्ञान की गठरी जो उतार देता है, वही उस सागर में यात्रा कर पाता है जो कि परमात्मा का है, ईश्वर का है।
पहला सूत्र है ज्ञान से मुक्त हो जाना। लेकिन हम सब तो ज्ञान की तलाश में हैं। हम सब तो इस खोज में हैं कि ज्ञान कहीं मिल जाए। भगवान न करे कि आपको कहीं ज्ञान मिल जाए। ज्ञान मिला कि आप वही बंद हो जाएंगे, वहीं ठहर जाएंगे, रुक जाएंगे। जो ज्ञानी हो जाते हैं, वही ठहर जाते हैं और मुर्दा हो जाते हैं। पंडित से ज्यादा मरा हुआ कोई आदमी कभी देखा है? दुनिया में जितना पांडित्य बढ़ता है उतना मुर्दापन बढ़ता है। क्यों? क्योंकि वह अपने जाने से, अपने ज्ञान से बंध जाते हैं। वह बंधन उनके चित्त को फिर उड़ानें

नहीं लेने देता है। अनंत सागर की, आकाश की, परमात्मा की उड़ान में जान में वह असमर्थन हो जाते हैं। उनके पैर जमीन से बंध जाती हैं। ज्ञान से मुक्त होने का साहस ही किसी व्यक्ति को धार्मिक बनाता है। तो पहला सूत्र है ज्ञान के तट से अपनी जंजीरें खोल दीजिए। बड़ी घबराहट लगेगी। घन छोड़ देना बहुत आसान है। लेकिन ज्ञान छोड़ना बहुत कठिन है। इसलिए जो लोग घन छोड़कर भाग जाते हैं वे लोग भी ज्ञान नहीं छोड़ पाते। धन छोड़कर भाग जाते हैं लेकिन उसी धन से जो किताबें खरीदते हैं उसका बस्ता बांधकर साथ ले जाते हैं। वे ज्ञान नहीं छोड़ते। एक आदमी संन्यासी हो जाता है, घर छोड़ देता है, परिवार छोड़ देता है, पत्नी और बच्चों को छोड़ देता है, लेकिन हिंदू होने को नहीं छोड़ता है, मुसलमान होने को नहीं छोड़ता है, जैन होने को नहीं छोड़ता है।
कैसी अजीब और आश्चर्य की बात है कि अब तक जमीन पर साधु पैदा नहीं हुए। हिंदू साधु होता है, मुसलमान साधु होता है, ईसाई साधु होता है, यह भी क्या पागलपन की बात है। साधु होना चाहिए जमीन पर। हिंदू, ईसाई और मुसलमान ये नाम कैसे साधु के पीछे लगे हैं? असाधु के साथ ये बीमारियां लगी रहें तो समझ में आता है लेकिन साधु के साथ इन बीमारियों को देखकर बहुत हैरानी होती है, बहुत आश्चर्य होता है। लेकिन ज्ञान जो पकड़ लिए गए हैं हिंदू का, मुसलमान का, जैन का उसे वे छोड़ते नहीं, उसे छोड़ना क्यों नहीं चाहते? वह भी तो एक आंतरिक संपदा है। इसलिए वह भी एक धन है। रुपया बाहर की संपत्ति है, ज्ञान भीतर की संपत्ति है। बाहर की संपत्ति छोड़ना बहुत कठिन नहीं है। भीतर की संपत्ति जो छोड़ता है, वही केवल परमात्मा में संबद्ध होता है।
क्राइस्ट ने कहा है कि धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं। कौन? क्या वे जिनके पास लंगोटी नहीं है? अगर वे ही धन्य हैं तो क्राइस्ट ने बहुत गलत बात कही है।
तो उसका मतलब यह हुआ कि वह गरीबी, दीनता और दरिद्रता के समर्थन में हैं।
लेकिन नहीं, क्राइस्ट ने कहा है--पुअर इन स्प्रिट जो आत्मा से दरिद्र हैं। क्या मतलब? आत्मा से दरिद्र का मतलब यह कि जिन्होंने ज्ञान की संपदा को फेंक दिया, जिन्होंने कहा कि हमारे पास भीतर कोई संपदा नहीं है, हम कुछ भी नहीं जानते, हम बिल्कुल अज्ञान में हैं, हमारा कोई ज्ञान नहीं है, जिन्होंने अतीत से, बीते से, जो गया उससे अपने को बांध नहीं रखा है। धन्य हैं वे लोग जिन्होंने ज्ञान की संपत्ति को छोड़ दिया है, वे ही लोग, केवल वे ही थोड़े से लोग सत्य को और परमात्मा को जान सकते हैं। तो क्या तैयारी है इस बात की आप ज्ञान को छोड़ दें?
धन को छोड़ने की तैयारी करवाने वाले लोग गलत साबित हुए हैं। धन छोड़ने
का कोई बड़ा सवाल नहीं है। धन बाहर है। अगर उसे छोड़ दीजिए तो इससे जो उपलब्धि होगी वह भी केवल बाहर की ही होगी। ज्ञान भीतर है। अगर उसे छोड़ा तो जो उपलब्धि होगी, वह भीतर की होगी। और स्मरण रखिए, दुनिया में केवल दो ही सिक्के हैं--धन के और ज्ञान के। और दो ही तरह के लोग हैं धन को इकट्ठा करने वाले लोग और ज्ञान को इकट्ठा करने वाले लोग।
एक बादशाह समुद्र के किनारे अपने महल में निवास करता था। एक सांझ वह
छत पर खड़ा हुआ था। सड़कों जहाज आते थे और जाते थे समुद्र में। उसने अपने वजीर को कहा कि देखते हो सैकड़ों जहाज आ रहे हैं और जा रहे हैं। उनके वजीर ने कहा पहले मुझे भी सैकड़ों दिखाई पड़ते थे। कुछ दिन से मुझे केवल दो ही जहाज दिखाई पड़ रहे हैं। उसके राजा ने कहा दिमाग खराब हो गया है? दो जहाज दिखाई पड़ते हैं? सैकड़ों आ रहे हैं, जा रहे हैं। उस वजीर ने कहा, हो सकता है कि मुझे गलत दिखाई पड़ता हो, लेकिन फिर भी मुझे दो जहाज दिखाई पड़ते हैं। एक तो धन का जहाज है और दूसरा है ज्ञान का जहाज। और इन दो ही जहाजों की सारी यात्रा है। या तो कोई धन खोजने जा रहा है या कोई ज्ञान खोजने।
धन से भी अहंकार तृप्त होता है। धन है मेरे पास। धन की खोज से तृप्ति होती है कि मैं कुछ हूं, कोई हूं। भूल जाते हैं हम कि मैं अपने को नहीं जानता। धन के मेरे पास, मैं कुछ हूं। जरा किसी धनी को धक्का दें तो कहेगा कि जानते नहीं कि मैं कौन हूं? लेकिन अगर उनका धन छिन जाए तो फिर वह यह नहीं कहेगा कि जानते नहीं कि मैं कौन हूं। धन था तो वह कुछ था। एक आदमी मंत्री है तो वह कुछ है। वह मंत्री न रह जाए और जैसी कि रोज होता है, कोई मंत्री है फिर नहीं भी रह जाता। भूतपूर्व मंत्री रह जाता है। मर गया। वह

मंत्री तब नहीं रह गया। जैसे कपड़े की कीज निकल जाए वैसा आदमी हो जाता है, बिल्कुल ढीला ढीला। उसको धक्का दो तो बिल्कुल नहीं कहता कि जानते हो--मैं कौन हूं, बल्कि वह कहेगा कि कहीं आपको चोट तो नहीं लग गई? लेकिन वह कल जब मंत्री था और आप पास से निकल जाते धक्का देकर, आपकी छाया का भी धक्का लग जाता तो कहता कि ठहरो! जानते नहीं कि मैं कौन हूं।
तो धन, पद, अनुभव यह भाव देता है कि मैं कुछ, हूं। इस मैं कुछ हूं के भ्रम में वह यह ख्याल ही भूल जाता है कि मैं यह भी नहीं जानता कि मैं कौन हूं। कुछ हूं के भ्रम में कौन हूं इस बात का स्मरण नहीं रह जाता। एक और खोज है ज्ञान की। ज्ञानी को भी दंभ पैदा हो जाता है कि मैं कुछ हूं और ज्ञानी धनी से कहीं ज्यादा दंभी होता है। क्योंकि वह यह कहता है कि यह धन तो बाहर की संपत्ति है। यह तो भौतिकवादी है। और हम! हम तो अध्यात्मवादी हैं, हम तो ज्ञान के खोजी हैं। धन, यह तो क्षुद्रवाद है। लेकिन इस ज्ञान से भी क्या हो रहा है? ज्ञान से भी अहंकार मजबूत हो रहा है कि मैं कुछ हूं।
ज्ञानियों की आंखों में देखिए, उनके आसपास ढूंढिए और खोजिए। वहां शांति नहीं मिलेगी, मिलेगा अहंकार। नहीं तो ज्ञानी शास्त्रार्थ करते, घूमते घूमते और एम दूसरे को हराते और पराजित करते? जहां किसी को हराने का भाव आता है वहां सिवाय अहंकार के और क्या होगा? ज्ञानी शास्त्र लिखते हैं और वह भी दूसरे शास्त्रों के खंडन, निंदा, गाली गलौज में? अगर इन ज्ञानियों के शास्त्र देखें तो बहुत हैरान हो जाएंगे। जितनी गाली गलौज की जा सकती है वह सब वहां मौजूद है। जितना जो भी मनुष्य के मन में दूसरे मनुष्य के प्रति हिंसा, घृणा और क्रोध हो सकता है वह सब वहां मौजूद है। यह क्या है? इन ज्ञानियों ने खुद भी लड़ा और दुनिया को लड़ाया और ऐसी दीवाल खड़ी कर दी जिसको तोड़ना मुश्किल हुआ जा रहा है। ये दीवालें सब अहंकार की दीवालें हैं और ये ज्ञानी अगर धन को छोड़ भी दें तो छोड़ने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। अहंकार फिर भी तृप्त होता है। अहंकार अपनी जगह है। धन छोड़ने से कोई फर्क नहीं पड़।
धनी का अहंकार होता है। त्यागी का अहंकार होता है। और त्यागी का अहंकार धनी के अहंकार से ज्यादा खतरनाक होता है। क्योंकि वह ज्यादा सूक्ष्म है और दिखाई नहीं पड़ता। ज्ञानी का अहंकार होता है कि मैं जानता हूं। यह जो जानने का भाव है यह सूक्ष्मता भीतरी दीवार है। यह सर्व से, समस्त से जुड़ने नहीं देगी। यह तोड़ देगी। अहंकार तोड़ने वाली इकाई है। वह आपको तोड़ता है सबसे तब आप अकेले रह जाते हैं। आप सबसे टूट जाते हैं। अहंकार तोड़ता है इसलिए अहंकार परमात्मा की तरफ ले जाने वाला नहीं होता है। अहंकार किसी भी भांति अपने को भरी सकता है--स्वार्थ से, ज्ञान से, धन से। न मालूम कितने और किन रूपों से भर सकता है। अहंकार जहां है, मैं कुछ हूं यह भाव जहां है वहां सर्व के साथ सामंज्य नहीं हो सकेगा। क्योंकि मैं कुछ हूं वही स्वर सारे संगीत को विकृत कर देगा। क्या यह नहीं हो सकता कि यह मैं चला जाए? यह हो सकता है, यह हुआ है। जमीन पर आगे भी यह होता रहेगा। यह आपके भीतर भी घटित हो सकता है।
ज्ञान के भ्रम को विसर्जित करने में मन डरता है। डर यह है कि अगर मेरा ज्ञान ही गया तो फिर मैं तो न कुछ हो गया। फिर तो मैं नामहीन हो गया। लेकिन जिन्हें परमात्मा को खोजना है, वे स्मरण रखें कि उन्हें न कुछ होना पड़ेगा। प्रेम के द्वार पर जो कुछ होकर जाता है उसे खाली हाथ वापस लौटना पड़ता है। प्रेम के द्वार पर जो न कुछ होकर जाता है उसे हमेशा द्वार खुले मिलते हैं और स्वागत मिलता है।
रूसी ने एक गीत गाया है। गाया है कि प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर गया। द्वार खटखटाया। किसी ने पूछा कौन हो? प्रेमी ने कहा, मैं हूं तेरा प्रेमी। तुरंत सन्नाटा हो गया। उसने बहुत बार द्वार भड़भड़ाए और कहा, बोलती क्यों नहीं हो? मैं तुम्हारा प्रेमी द्वार पर पड़ा खड़ा हुआ, चिल्ला रहा हूं। आधी रात गयी भीतर से किसी ने कहा लौट जाओ। यह द्वार न खुल सकेगा। क्योंकि प्रेम के द्वार पर जो आदमी कहता है कि मैं हूं प्रेम के द्वार उसके लिए कैसे खुल सकते हैं? प्रेम के घर में दो कि लिए कोई जगह नहीं है, लौट जा। वह प्रेमी लौट गया। वर्षा हो गई, सर्दी आई, धूप आई, दिन आए और गए।

चांद उगे और गिरे और न मालूम कितने वर्ष बीते। और फिर एक बार रात उस दरवाजे पर फिर दस्तक सुनी गयी। और फिर उससे किसी ने पूछा कि कौन हो? बाहर से किसी ने कहा कि अब तो तू ही है। और कहते हैं द्वार खुल गए और पीछे पता चला कि द्वार तो खुले ही हुए थे। केवल मैं के कारण बंद मालूम पड़ते थे। मैं नहीं था तो कोई दीवार न थी। मैं परमात्मा और मनुष्य के बीच में रुकावट है। मैं पर पहली और गहरी और सूक्ष्म चोट वही होगी जहां मैं सबसे गहरी जड़ें हैं। वह जो जानने का भाव, वह जो जानने का ख्याल है, उसे तोड़ना होगा। और सच्चाई तो यह है कि हम जानते भी कुछ नहीं है, तोड़ने में कठिनाई क्या है? क्या जानते हैं? क्या जाना है? कुछ भी तो नहीं। जीवन ऐसे निकल जाता है जैसे पानी पर कोई लकीर खींचता है। जान ही क्या पाते हैं? कभी सोचा है कि क्या जान पाए हैं? कुछ भी तो नहीं लेकिन छोड़ने में भय होता है। उस भय को जो पार नहीं करता वह परमात्मा के रास्ते में यात्रा नहीं हो सकता है। उस भय को पार करना होगा। पहला सूत्र है ज्ञान के अहंकार को चोट देना। उसे बिखेरना, उसे जानना। चोट देते ही एक अदभुत क्रांति भीतर मालूम होगी। जिंदगी बिल्कुल और तरह की दिखाई पड़ने लगेगी। जिस फूल के पास कल गुजरे थे उसी फूल के पासे से जब आज गुजरेंगे तो फूल दूसरा दिखाई पड़ेगा। क्योंकि कल आप सोचते थे कि मैं जानता हूं इस फूलों को। जिस फूल को आप जानते थे तो वह इस भ्रम के कारण ही न कुछ था, लेकिन आज उस फूल के पास से निकलेंगे और यह जानते हुए कि नहीं जानते हैं, तो शायद एक पल ठहर जाएंगे और उस फूल को देखेंगे तब शायद वह रहस्यपूर्ण मालूम होगा और न मालूम कितने दूर का संदेश लाता हुआ मालूम पड़ेगा। उस फूल को भी अगर पूरी तरह शांति से देखेंगे तो शायद परमात्मा के किसी सौंदर्य की झलक वहां दिखाई देगी। लेकिन जानने वाले व्यक्ति को वह नहीं दिखाई पड़ेगा। क्योंकि वह सब जगह से अंधे की भांति निकल जाता है।
यह जो ज्ञान का दंभ है, वह आदमी को अंधा कर देता है। यह चीजों को देखने नहीं देता है। पैर के नीचे जो दूब है परमात्मा वहां भी है, आसपास जो लोग हैं, परमात्मा वहां भी है। हवाएं हैं, आकाश है और बादल हैं और सब कुछ है और जो कुछ है सब में वही है। लेकिन वह दिखाई तो नहीं पड़ता क्योंकि देखनेवाली आंख नहीं है। यह ज्ञान जो रोके हुए है सारे रहस्य के द्वार पर्दे की तरह, दीवालें की तरह। तो पहली चोट इन ज्ञान पर ही करनी पड़ेगी और ज्ञान पर आप चोट कर पाए तो एक दूसरा अभिनव क्षितिज खुलता हुआ दिखाई पड़ेगा--जो कि प्रेम का है, जो ज्ञान को छोड़ने को राजी होता है उसके लिए प्रेम के द्वार खुल जाते हैं।
तो पहला सूत्र है, ज्ञान से तोड़ना अपने को। और दूसरा सूत्र है, प्रेम
से जोड़ना। जानने का भाव छोड़ दें और प्रेम करने के भाव को जान लें। जानने वाला नहीं जान पाता है और प्रेम करने वाला जाना लेता है। हम तो कुछ ऐसे हजारों वर्षों से प्रेम के विरोध में पाले गए हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। ज्ञान के पक्ष में और प्रेम के विरोध में पाले गए हैं। मैं आप से निवेदन करता हूं कि ज्ञान के विरोध में, प्रेम से, प्रेम के जीवन में गति करें। प्रेम में चरण रखें। जब प्रेम की दिशा में चित्त प्रवाहित हो जाएगा तो परमात्मा से ज्यादा निकट कोई भी नहीं है ओर अगर ज्ञान की दिशा में बुद्धि काम करती रहेगी तो परमात्मा से ज्यादा दूर कोई नहीं है। विज्ञान कभी परमात्मा को नहीं जान पाएगा क्योंकि विज्ञान की खोज किसी तथाकथित ज्ञान की ही खोज है। इसलिए विज्ञान जितना बढ़ता जाता है वह कहता है कि ईश्वर कहीं नहीं है। विज्ञान इसी तथाकथित ज्ञान की चरम परिणति है। लेकिन प्रेम तो हर कदम पर परमात्मा को पता है। प्रेम तो हिल भी हनीं पाता बिना परमात्मा के। लेकिन प्रेम की भाषा को गणितज्ञ कैसे समझेगा? ज्ञानी कैसे समझेगा? प्रेम की भाषा उसकी समझ में बिल्कुल भी नहीं आती।
एक फकीर था। वह प्रेम के गीत गाता और प्रेम की हो बातें करता था। अनेक लोग उससे कहते कि तुम परमात्मा की बातें क्यों नहीं करते। वह कहता कि परमात्मा की बातें क्या करें। जो प्रेम को ही नहीं जानता उससे परमात्मा की बातें करनी नासमझी है। वह कहता कि हम तो प्रेम की ही बातें करते हैं। जो प्रेम को नहीं जानता उससे परमात्मा के लिए क्या कहें? जिन्होंने दिया नहीं देखा उनको सूरज की क्या खबर कहें। वह क्या समझेंगे सूरज को और जिसने

दिया देखा है उससे भी क्या सूरज की बात करें? क्योंकि जिसने दिया देख लिया है उसने सूरज भी देख लिया है।
एक दिन एक पंडित पहुंचा और उसने कहा कि तुम प्रेम ही प्रेम रटे जाते हो। यह भी पता है कि प्रेम कितने प्रकार का होता है? पंडित हमेशा प्रकार पूछता है। वह पूछता है कि कितने प्रकार का प्रेम होता है, कितने प्रकार के सत्य होते हैं, कितने प्रकार के ईश्वर होते हैं? वह तो हर जगह यही बात पूछता है। पंडित ने उस फकीर से भी पूछा कि कितने प्रकार का प्रेम होता है। मालूम है? वह फकीर बोला, हैरान कर दिया तुमने। प्रेम तो हम जानते हैं। प्रकार का तो हमें आज तक कोई पता नहीं चला। यह प्रकार क्या होता है? प्रेम में और प्रकार? पंडित हंसा। उसने कहा हंसने की बारी मेरी है। अपनी झोली से उसने किताब निकाली और कहा कि यह किताब देखो। इसमें लिखा है कि प्रेम पांच प्रकार का होता है। और तुम प्रेम की बकवास कर रहे हो और प्रकार तक का पता ही नहीं! क्या खाक तुम्हें प्रेम का पता होगा? अभी अ, ब, स, भी नहीं आता है तुम्हें प्रेम का। तुम्हें अभी प्रकार भी मालूम नहीं है। यह तो पहली क्लास है प्रेम की। तो पहले प्रकार सीखो, प्रेम के संबंध में शास्त्र पढ़ो, प्रेम के सिद्धांत सीखो फिर प्रेम की बातें करा। वह फकीर बोला कि भूल हो गयी भाई, हम तो प्रेम ही करने लगे। यह तो गलती हो गयी। प्रकार सीखने के लिए किसी प्रेम के विद्यालय में भर्ती होना था। मैं नहीं हो पाया। यह गलती हो गयी। उस पंडित ने कहा कि सुनो, मैं तुम्हें अपना शास्त्र सुनाता हूं। उसने शास्त्र सुनाया। बड़ी भारी व्याख्या की जैसी कि पंडितों की हमेशा से आदत रही है। वे भारी व्याख्यान करते रहे हैं, बिना इस बात को जाने कि जिसकी वे व्याख्या कर रहे हैं उसे वे जानते भी हनीं। उसने बड़ी बारीक व्याख्या की, बड़े सूक्ष्म तर्क उठाए। फकीर बिना कोई जवाब दिए शांति से सुनता रहा। पंडित ने सोचा ठीक है। फकीर प्रभावित है। क्योंकि पंडित एक ही बात जानता है। या तो विवाद करो या फिर शांत रह जाओ, विवाद मत करो। उसने देखा कि फकीर विवाद नहीं करता है तो वह मान रहा है। तब उसने कहा, सुनी पूरी बात? समझ में आयी? कैसा लगा? तुम्हें कैसा लगा मेरी बात सुन कर? उस फकीर ने कहा कि मुझे ऐसे लगा, जैसे एक दफा एक फूल की बगिया में एक जौहरी सोने को कसने के पत्थर को लेकर घूस आया और माली से बोला देखो कौन कौन फूल सच्चे हैं, मैं अभी पता लगाता हूं। और अपन सोने के पत्थर पर फूलों को घिस घिस कर देखने लगा। और सभी फूल कच्चे साबित हुए। सभी फूल झूठे साबित हुए। तो जैसा उस माली को लगा था वैसे ही मुझे लगा। जब तुम प्रेम के प्रकार करने लगे।
प्रेम की भाषा अभेद की भाषा है, ज्ञान की भाषा भेद की भाषा है ज्ञान तोड़ता है, ज्ञान विश्लेषण करता है, प्रेम जोड़ता है। विज्ञान तोड़ता है। तोड़ता चला जाता है। आखिर में मिलता है परमाणु, आखिरी टुकड़ा! प्रेम और धर्म जोड़ता चला जाता है, जोड़ता चला जाता है। आखिर में मिलता है परमात्मा। विज्ञान परमाणु पर पहुंचता है जो कि तोड़ता है, तोड़ता है। प्रेम परमात्मा पर पहुंचता है जो कि जोड़ता है, जोड़ता है। जोड़ने से द्वार मिलेगा परमात्मा का, तोड़ने से नहीं। इसलिए पहला सूत्र है ज्ञान को छोड़ दें। दूसरा सूत्र है प्रेम को फैलने दें और विकसित होने दें। लेकिन यह कैसे प्रेम फैलेगा और विकसित होगा? क्या जबरदस्ती किसी को जाकर प्रेम करना शुरू कर दीजिएगा? ऐसे लोग भी हैं जो जबरदस्ती भी करते हैं, सेवा करते हैं, इस आशा में कि शायद परमात्मा मिल जाए।
एक स्कूल में एक पादरी ने बच्चों को समझाया कि तुम प्रेम करो, सेवा करो। विना एक सेवा का काम किए सोओ की मत। दूसरे दिन उसने बच्चों से पूछा कि तुमने कोई सेवा का, प्रेम का कृत्य किया? तीन बच्चों ने हाथ उठाए और कहा कि हमने किया। बड़ा खुश हुआ पादरी। तीस बच्चे थे। कम उठाए और कहा कि हमने किया। बड़ा खुश हुआ पादरी। तीस बच्चे पूछा कि तुमने क्या प्रेम का कृत्य किया? बच्चे ने कहा, मैंने एक बूढ़ी स्त्री को सड़क पार करवाई है। उस पादरी ने कहा, धन्यवाद। बहुत अच्छा किया दूसरे लड़के से पूछा, तुमने क्या किया? उसने कहा कि मैंने भी एक बूढ़ी स्त्री को सड़क पार करवाई है। पादरी को थोड़ा सा ख्याल हुआ कि इन दोनों ने एक ही काम किया। उसने कहा तुम ने भी अच्छा किया। तीसरे बच्चे से पूछा तुमने क्या किया? उसने कहा मैंने भी एक बूढ़ी

स्त्री को सड़क पार करवाई है। पादरी थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, क्या तुम तीनों ने एक ही सेवा का कृत्य किया? तुमको तीन बूढ़ी स्त्रियां मिल गयी जिनको तुमने सड़क पर करवाई? उन्होंने कहा, नहीं, आप गलत समझे। तीन नहीं थीं। हम तीनों ने उसी को पार करवाया। उसने पूछा, क्या तुम तीन लोगों की सहायता की जरूरत पड़ी उसको पार कराने में? उन बच्चों ने कहा, वह पार होना ही नहीं चाहती थी। हमने जबरदस्ती किसी तरह उसे पार किया। वह भागती थी। पार होना नहीं चाहती थी।
ये जो सेवक सारी दुनिया में सेवा करते हुए मालूम पड़ते हैं वे उसी तरह
के खतरनाक लोग हैं। ये जबरदस्ती सेवा किए चले जाते हैं। ये उन बूढ़े लोगों को सड़क पार करवा देते हैं जिनको पार करना नहीं है। दुनिया में सेवकों ने जितना उपद्रव किया है उतना और किसी ने नहीं किया है। ये सोचते हैं कि इस भांति हम अपना मोक्ष तय कर रहे हैं। हमको क्या फिकर है कि आपको सड़क पार करनी या नहीं करनी है। हम तो अपने मोक्ष का इंतजाम कर रहे हैं। आपको पार करना हो या न करना हो, हम आप को पार करवाए देते हैं।
इस तरह को जबरदस्ती प्रेम और सेवा उत्पन्न नहीं होती। प्रेम कोई कृत्य नहीं है। प्रेम आपका प्राण बने, तभी सार्थक है। प्रेम आपका प्राण कैसे बनेगा? कैसे यह संभव होगा कि प्रेम आपसे प्रवाहित हो उठे? यह छोटी सी बात अगर ख्याल में आ जाए तो प्रेम को प्रवाहित होने में कोई भी बाधा नहीं है। और वह छोटी सी बात यह नहीं है कि आपके प्रेम से दूसरों को लाभ होगा, बल्कि वह छोटी सी बात यह है कि प्रेम के अतिरिक्त आप भी आनंद में प्रतिष्ठित नहीं हो सकेंगे। प्रेम आनंद में प्रतिष्ठा देता है। प्रेम किसी का कल्याण नहीं है। प्रेम आपका ही आनंद है। कभी आपने कोई ऐसा आनंद जाना है जो प्रेम से रिक्त और शून्य रहा हो? जब भी आप आनंद में रहे होंगे तब जरूर किसी प्रेम की दशा में ही आनंद में रहे होंगे। लेकिन प्रेम में खुद को खोना पड़ता है, छोड़ना पड़ता है। खुद को छोड़ने की सामर्थ्य जिसमें हैं, उसके भीतर उसके प्राण प्रेम से भर सकते हैं। हमने अपने को जरा भी छोड़ने को राजी नहीं हैं। हम आपने को खोने को राजी नहीं हैं जब कि खोने वाला हृदय, देनेवाला हृदय और बांटनेवाला हृदय ही प्रेम करने वाला, हृदय है।
यह जो मांगने वाला हृदय है, यही प्रेम न करने वाला हृदय है। हम सब चौबीस घंटे मांग रहे हैं। और जब सभी लोग मांग रहे हैं तो जिंदगी अगर घृणा से भर जाए, हिंसा से भर जाए तो आश्चर्य क्या? और अगर ईश्वर की हत्या हो जाए, तो आश्चर्य कैसा? इसमें कौन सी आश्चर्य की बात है? मांगने वाला हृदय धार्मिक हृदय नहीं है। बांटने वाला, देने वाला जरूरी नहीं है कि अपना कपड़ा बांट दें और धन बांट दें। यह सवाल नहीं है। हृदय के बांटने वाले भाव को चौबीस घंटे मौके हैं, चौबीस घंटे चुनौतियां हैं सब तरह से, सब तरह से। मौका है कि प्रेम आपके दिल में जगे और फैले। लेकिन इस प्रेम के लिए खोना पड़ेगा खुद को, देना पड़ेगा खुद को। खुद को खोए बिना कोई रास्ता नहीं है। और खोने के दो रास्ते हैं। या तो नशा करें और अपने को खो दें जैसे कि सब लोग खोते हैं। शराब पीते हैं और खुद को खो देते हैं। राम राम जपते हैं और इतनी देर जपते हैं दिमाग ऊब जाता है और नींद आ जाती है और खो जाते हैं। कोई नाटक देखता है, संगीत सुनता है और मूर्छित हो जाता है, खो जाता है। अपने के भूला देने के लिए, अपने को विस्तृत करने के लिए बहुत से रास्ते हैं। एक तो यह खोना है। यह खोना हम सारे लोग जानते ही हैं। लेकिन यह खोना नहीं है, यह सोना है। यह मूर्छित होना है।
एक और खोना है प्रेम में। प्रेम जो खोता है उसे आत्मा का स्मरण हो जाता है और नशे में जो खोता है उसे जो स्मरण है, वह भी भूल जाता है। प्रेम में कैसे खोएं? क्या करें? एक बात अगर ख्याल में आ जाए तो प्रेम आग से बहेगा। और आप खो सकेंगे। वह बात यह है स्वयं को एक इकाई की तरह समझ लेना भूल हैं। आप पैदा हुए हैं। आपको पता है कैसे और कहां से? आप मर जाएंगे। पता है कहां और क्यों? आप जीवित हैं। पता है कैसे? आपकी श्वास चल रही है। पता है कौन चला रहा है? क्यों चल रही है? लोग कहते हैं कि में श्वास ले रहा हूं। कभी आपने सोचा है कि इससे ज्यादा झूठ और कोई बात हो सकती है कि आप कहें कि मैं श्वास ले रहा हूं? अगर आप श्वास ले रहे हैं, तो फिर दुनिया में कोई आप

को मार ही नहीं सकेगा। वह मारे, आप श्वास लेते चले जाए। फिर क्या होगा? फिर तो मृत्यु कभी न आ सकेगी। क्योंकि आप श्वास लेते चले जाएंगे। मृत्यु क्या करेगी? लेकिन हम सब जानते हैं कि मृत्यु क्या करेगी? श्वास हम लेते नहीं हैं, श्वास चल रही है। और कहते हम यह हैं कि श्वास मैं ले रहा हूं। लेकिन जिंदगी भर कहते हैं कि मेरा जन्म। झूठा है यह बात। मेरा जन्म क्या हो रहा है, मैं कहा हूं? उसी जन्म में कहते हैं मेरी श्वास, मेरा जीवन।
इस मैं में व्यर्थ जुड़ते चले जाते हैं जो कि कहीं भी सच्चा नहीं है, और
जो कि है भी नहीं। इसको जोड़ते जोड़ते हम मन में कल्पित कर लेते हैं फिर ऐसा लगता है कि मैं हूं। और यह मैं हूं मांगने लगता है। क्योंकि वह बिना मांगे जी नहीं सकता है। इकट्ठा करने लगता है धन, ज्ञान, त्याग और पूछने है कि मैं मोक्ष कैसे जाऊं। स्वर्ग कैसे जाऊं? परमात्मा को कैसे पाऊं? वह सब मैं की वजह से है। मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूं कि आप अहंकार छोड़ने की कोशिश करें। और यदि आपने कोशिश की तो कभी नहीं छोड़ पाएंगे, क्योंकि छोड़ने की कोशिश कौन करेगा? वही मैं। और हो सकता है कि एक दिन वह यह घोषणा कर दे कि मैं सब बिल्कुल अहंकारी नहीं हूं। मैं तो अब बिल्कुल विनम्र हो गया हूं, अहंकार तो मुझे में है ही नहीं। तो छोड़ने की कोशिश से वह नहीं जाएगा। जिस दिन जीवन को उसकी समग्रता में देखेंगे उसी दिन उस सम्यक दर्शन के प्रकाश में वह नहीं पाया जाएगा। जिस दिन दिखेगा, जन्म अज्ञात है, यात्रा अज्ञात है, मृत्यु अज्ञात है, उसी दिन वह विसर्जित हो जाएगा।
फिर उसे छोड़ना नहीं पड़ेगा, वह विलीन हो जाएगा, वह पाया नहीं जाएगा। एक हंसी आएगी और लगेगा कि मैं तो था ही नहीं और जिस दिन यह दिखाई पड़ेगा कि मैं नहीं है उसी दिन दिखाई पड़ेगा वह जो है। उसका नाम ही परमात्मा है और उसी दिन वह बहने लगेगा जिसका नाम प्रेम है। उसी दिन सारे हृदय के द्वारों से एक प्रेम की गंगा चारों तरफ बहने लगेगी। एक प्रकाश, एक आनंद, एक थिरक और एक संगीत स्वयं में पैदा हो जाएगा। उस पुलक और संगीत का नाम धर्म है। उस पुलक, संगीत प्रेम और आलोक में जो जाना चाहता है उसी का नाम परमात्मा है। पत्थरों का परमात्मा मर गया है और अगर हम प्रेम के परमात्मा को जन्म नहीं दे सकें तो फिर मनुष्य जाति को बिना परमात्मा के रहना होगा और सोच सकते हैं कि बिना परमात्मा के मनुष्य जाति का क्या होगा? जीवन में जो भी पाने जैसा है वह प्रेम है। क्यों? क्योंकि प्रेम परमात्मा की सुगंध है और जो प्रेम को पा लेता है, वह धीरे-धीरे सुगंध के मूल स्रोत को पा लेता है। वह परमात्मा किसी का भी नहीं है और बस का है। वह परमात्मा किसी मंदिर और मस्जिद में कैद नहीं है और वह परमात्मा किसी मूर्ति में आबद्ध नहीं है। वह सब तरफ फैला है। उसे देखने वाली प्रेम की आंखें चाहिए। अंधे शास्त्रों को पढ़ते रहेंगे उससे कुछ नहीं होगा और प्रेम की आंखवाले आंख खोल कर देख लें तो सब आनंद ही जाता है।
ये दो सूत्र मैंने कहे--ज्ञान के तट से जंजीरें तोड़ लें और प्रेम के आकाश की यात्रा में पंख खोल दें। पाल खोल दें। प्रेम की हवाएं आपको ले जाएगी, लेकिन ये दोनों बातें तभी हो सकती हैं जब इन दोनों के बीच एक मध्य बिंदु हो, वह मैंने से अंत में कहा। वह आपका अहंकार है। अहंकार छोड़ें तो ही ज्ञान से छुटकारा हो सकता है और अहंकार जाए तो ही प्रेम के और परमात्मा के द्वार खुल सकते हैं। अहंकार बिल्कुल भी नहीं है। उसको बिदा करना है जो है ही नहीं। उससे हाथ जोड़ना है जो है ही नहीं। ताकि उसे पाया जा सके जो है, सदा से है, सदा रहोगे, अभी है, यहीं है।

प्रेम है द्वार प्रभु का छठवां प्रवचन

अहंकार

एक पूर्णिमा की रात में एक छोटे से गांव में, एक बड़ी अदभुत घटना घट गई। कुछ जवान लड़कों ने शराबखाने में जाकर शराब पी ली और जब वे शराब के नशे में मदमस्त हो गए और शराब गृह से बाहर निकले तो चांद की बरसती हुई चांदनी में यह ख्याल आ गया कि नदी पर जाए और नौका विहार करें। रात बड़ी सुंदर थी और नशे से भरी हुई थी। वे गीत गाते हुए नदी के किनारे पहुंच गए। नाव वहां बंधी थी। मछुवे नाव बांध कर घर जा चुके थे। रात आधी हो गयी थी। सुबह की ठंडी हवाओं ने उन्हें सचेत किया। उनका नशा कुछ कम हुआ और उन्होंने सोचा कि हम न मालूम कितने दूर निकल आए हैं। आधी रात से हम नाव चला रहे हैं, न मालूम किनारे और गांव से कितने दूर आ गए हैं। उनमें से एक ने सोचा कि उचित है कि नीचे उत्तर कर देख लें कि हम किस दिशा में आ गए हैं। लेकिन नशे में जो चलते हैं उन्हें दिशा का कोई भी पता नहीं होता है कि हम कहां पहुंच गए हैं और किस जगह हैं। उन्होंने सोचा जब तब हम इसे न समझ लें तब तक हम वापस भी कैसे लौटेंगे। और फिर सुबह होने के करीब है, गांव के लोग चिंतित हो जाएंगे।
एक युवक नीचे उतरा और नीचे उतर कर जोर से हंसने लगा। दूसरे युवक ने पूछा, हंसते क्यों हो? बात क्या है? उसने कहा, तुम भी नीचे उतर आओ और तुम भी हंसो। वे सारे लोग नीचे उतरे और हंसने लगे। आप पूछेंगे बात क्या थी? अगर आप भी उस नाव में होते और नीचे उतरते तो आप अभी हंसते। बात ही कुछ ऐसी थी। वे कहीं के वही खड़े थे, नाव कहीं भी नहीं गयी थी। असल में वे नाव की जंजीर खोलना भूल गए थे। नाव की जंजीर किनारे से बंधी थी। उन्होंने बहुत पतवार चलायी थी और बहुत श्रम किया था लेकिन सारा श्रम व्यर्थ हो गया था क्योंकि किनारे से बंधी हुई नावें कोई यात्रा नहीं करती।
मनुष्य की आत्मा की नाव भी किसी खूंटी से बंधी है। और इसीलिए उसकी आत्मा की कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच पाती है। वे वहीं खड़े रह जाते हैं जहां से यात्रा शुरू होती है। श्रम वे बहुत करते हैं, पतवार वे बहुत चलाते हैं, समय वे बहुत लगाते हैं लेकिन नाव कहीं पहुंचती नहीं है। और आदमी उस खूंटी से बंधा हुआ एक कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाता है। एक ही जगह पर घूमता है। घूमते-घूमते नष्ट और समाप्त हो जाता है। सारा जीवन इन्हीं चक्करों में व्यर्थ चला जाता है।
एक गांव में मैं गया था। एक बैल कोल्हू चलाने का जीवन भर काम करता रहा। फिर वह बूढ़ा हो गया और बैल के मालिक ने उसे काम के योग्य न समझ कर छोड़ दिया। अब वह खुला ही घूमता रहता था। लेकिन मैं बड़ा हैरान हुआ। वह गोल चक्करों में ही घूमता था। खेत में उसे छोड़ देते तो वह गोल चक्कर लगाता था। जीवन भर की उनकी आदत थी। आज कोई बीच में खूंटी भी नहीं थी। आज किसी कोल्हू में भी वह नहीं जुता था। लेकिन जीवन भर गोल चक्करों में जो घूमा है वह गोल चक्करों में घूमने की आदत के कारण फिर भी गोल गोल ही घूमता था। गांव के लोगों ने उस बैल को समझाने की बहुत कोशिश की, कि इस तरह मत घूमो, लेकिन बैल कहीं किसी की सुनते हैं? बैल तो दूर, आदमी ही नहीं सुनते तो बैल कैसे सुनेंगे? उस गांव के लोग कैसे नासमझ थे, उस बैल को समझाते थे कि सीधे चलो, गोल गोल घूमने की कोई भी जरूरत नहीं है क्योंकि जो गोल गोल घूमता है वह कहीं भी नहीं पहुंचता है। जिसे पहुंचना हो, उसे सीधा जाना होता है, गोल नहीं घूमना होता है। मुझे हंसी आयी थी उन गांव के लोगों पर। मैं भी उस गांव के लोगों को समझाने गया था। गांव के एक बूढ़े आदमी ने कहा कि तुम हम पर हंसते हो कि हम बैलों को समझाते हैं और हम तुम पर हंसते हैं कि तुम आदमी को समझाते हो। न बैल सुनते हैं, न आदमी सुनता है और बैल तो सुन भी सकते हैं कभी क्योंकि बैल सीधे और सरल हैं। आदमी तो बहुत तिरछा है, वह नहीं सुन सकता है। लेकिन फिर भी चाहे यह गलती ही सही, नासमझी ही सही, आदमी को समझाना ही पड़ोगे। वह सुने या न सुने उसे कहना ही पड़ेगा। क्या कहना है उसे? उस खूंटी के बाबत उसे कहना है जिससे बंधा हुआ वह एक कोल्हू का बैल बन जाता है, एक अमृतमयी आत्मा नहीं। वह एक बंधा हुआ पशु बन जाता है। शायद आपको पता न हो कि

पशु शब्द का अर्थ क्या होता है? पशु शब्द का अर्थ ही होता है जो पाश में बंधा हो। बंधे हुए होने को ही पशु कहते हैं। पशु का अर्थ है जो पाश में बंधा है, किसी जंजीर में बंधा है, किसी कील से ठुका है। जो बंधा है वही पशु है। हम सारे लोग ही बंधे हैं। हमारे भीतर मनुष्य का भी जन्म नहीं हो पाता, परमात्मा तो बहुत दूर की मंजिल है। अभी तो आदमी भी होना बहुत कठिन है। डायोजनीज का नाम सुना होगा, जरूर सुना होगा। और यह भी हो सकता है कि वह कहीं न कहीं आपको मिल गया हो। सुनते हैं दो हजार साल पहले वह पैदा हुआ था और दिन की भरी रोशनी में जलती हुई लालटेन लेकर गांवों में घूमा करता था और हर आदमी के चेहरे के पास लालटेन ले जाकर देखता था। लोग चौंक जाते थे कि क्या बात है! क्या देखना चाहता है! और दिन की रोशनी में जब कि सूरज आकाश में हो, लालटेन किसलिए लिए हुए हैं? दिमाग खराब हो गया है? वह कहता, दिमाग मेरा खराब नहीं हुआ है। मैं आदमी की तलाश में हूं। मैं हर आदमी के चेहरे को रोशनी में देखने की कोशिश करता हूं, आदमी है या नहीं? क्योंकि चेहरे बहुत धोखा देते हैं। चेहरों से ऐसा मालूम होता है कि सब आदमी हैं और भीतर आदमियत का कोई निवास नहीं होता है।
आदमी भी होना कठिन है, परमात्मा तो दूर की मंजिल है। लेकिन यह भी आपसे कहूं, जो आदमी हो जाता है उसके लिए परमात्मा की मंजिल भी बहुत निकट हो जाती है। कौन सी चीज है जो हमें बांधे हैं जिसके कारण हम पशु हो जाते हैं?
एक छोटी सी कहानी से शायद इशारा ख्याल में आ सके कि कौन सी चीज हमें बांध हुए है, कौन चीज के इर्द गिर्द हम जीवन भरी घूमते हैं और नष्ट हो जाते हैं। कुछ ऐसी चीज है जिसके पीछे हम पागल की तरह चक्कर लगाते हैं और व्यर्थ नष्ट हो जाते हैं।
एक जंगल के पास एक छोटा सा गांव था। और एक दिन सुबह एक सम्राट शिकार खेलने में भटक गया और उस गांव में आया। रात भर का थका मांदा था और उसे भूख लगी थी। वह गांव के पहले ही झोपड़े पर रुका और उसे झोपड़े के बूढ़े आदमी को कहा, क्या मुझे दो अंडे उपलब्ध हो सकते हैं? थोड़ी चाय मिल सकती है? उस बूढ़े आदमी ने कहा: जरूर, स्वागत है आपका! आइए! वह सम्राट बैठ गया उस झोपड़े में। उसे चाय और दो अंडे दिए गए। नाश्ता कर लेने के बाद उसने पूछा कि इन अंडों के दाम कितने हुए उस बूढ़े आदमी ने कहा: ज्यादा नहीं, केवल सौ रुपये। सम्राट तो हैरान हो गया। उसने बहुत महंगी चीजें खरीदी थीं, लेकिन कभी सोचा भी नहीं था कि दो अंडों के दाम भी सौ रुपये हो सकते हैं। उस सम्राट ने उस बूढ़े आदमी को पूछा: क्या इतना कठिन है अंडे का मिलना यहां? वह बूढ़ा आदमी बोला: नहीं, अंडे तो बहुत मुश्किल नहीं हैं, बहुत होते हैं, लेकिन राजा मिलना बहुत मुश्किल है। राजा कभी कभी मिलते हैं। उस सम्राट ने सौ रुपये निकाल कर उस बूढ़े को दे दिए और अपने घोड़े पर सवार होकर चला गया।
उस बूढ़े की औरत ने कहा, कैसा जादू किया तुमने कि दो अंडे के सौ रुपये वसूल कर लिए। क्या तरकीब थी तुम्हारी? उस बूढ़े ने कहा, मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं। जिसके आसपास आदमी जीवन भर घूमता है वह खूंटी मुझे पता है। और खूंटी को छू दो और आदमी एकदम घूमना शुरू हो जाता है। मैंने वह खूंटी छू दी और राजा एकदम घूमने लगा। उसकी औरत ने कहा, मैं समझी नहीं। कौन सी खूंटी? कैसा घुना? उस बढ़े ने कहा, तुझे मैं एक और घटना बताता हूं अपनी जिंदगी की। शायद उससे तुझे समझ में आ आए।
जब मैं जवान था तो मैं एक राजधानी गया। मैंने वहां एक सस्ती सी पगड़ी खरीदी जिसे के दाम तीन चार रुपये थे। लेकिन पगड़ी बड़ी रंगीन और चमकदार थी। जैसी कि सस्ती चीजें हमेशा रंगीन और चमकदार होती हैं। जहां बहुत रंगीनी हो और बहुत चमक हो, समझ लेना भीतर सस्ती चीज होनी ही चाहिए। सस्ती थी लेकिन तब भी बहुत चमकदार थी, बहुत रंगीन थी। मैं उस पगड़ी को पहनकर सम्राट के दरबार में पहुंच गया। सम्राट की आंख एकदम से उस पगड़ी पर पड़ी। क्योंकि दुनिया में ऐसे लोग बहुत कम हैं जो कपड़े के अलावा कुछ और देखते हों। आदमी को कौन देखता है? आत्मा को कौन देखता है? पगड़ियां भर दिखाई पड़ती हैं। उस सम्राट की नजर एकदम पगड़ी पर गई और उसने कहा, कितने में खरीदी है? बड़ी सुंदर रंगीन है। मैंने उस सम्राट से कहा, पूछते हैं कितने में खरीदी है? पांच हजार रुपए खर्च किए हैं इस पगड़ी के लिए। सम्राट तो एकदम हैरान हो गया

लेकिन इससे पहले कि सम्राट कुछ कहता, वजीर ने उसके सिंहासन के पास झुककर सम्राट के कान में कुछ कहा। उसने सम्राट के कान में कहा कि सावधान! आदमी धोखेबाज मालूम होता है। दो चार पांच रुपए की पगड़ी के पांच हजार दाम बता रहा है। बेईमान है। लूटने के इरादे हैं।
उस बूढ़े ने अपनी पत्नी को कहा: मैं फौरन समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। जो लोग किसी को लूटते रहते हैं वे दूसरे लूटने वाले से बड़े सचेत हो जाते हैं। लेकिन मैं भी हारने को राजी नहीं था। मैं वापस लौटने लगा। मैंने उस सम्राट को कहा कि मैं जाऊं? क्योंकि मैंने जिस आदमी से यह पगड़ी खरीदी है उसने मुझे यह वचन दिया है कि इस पृथ्वी पर एक ऐसा सम्राट भी है जो इस पगड़ी के पचास हजार भी दे सकता है। मैं उसी सम्राट की खोज में निकला हुआ हूं? तो मैं जाऊं? आप वह सम्राट नहीं हैं। यह राजधानी वह राजधानी नहीं है। यह दरबार वह दरबार नहीं है जहां यह पगड़ी बिक सकेगी। लेकिन कहीं बिकेगी, मैं जाता हूं।
उस सम्राट ने कहा: पगड़ी रख दो और पचास हजार रुपए ले लो। वजीर बहुत हैरान हो गया। जब और कहा हद कर दी। हम भी बहुत कुशल हैं लूटने में लेकिन यह तो जादू हो गया। मामला क्या है? तो मैंने वजीर के कामन मग कहा कि तुम्हें पता होगा कि पगड़ियों के दाम कितने होते हैं, लेकिन मुझे आदमियों की कमजोरियां का पता है। मुझे उस खूंटी का पता है जिसको छू दो और आदमी एकदम घूमने लगता है।
पता नहीं वह बूढ़ी समझा पाई अपने पति की यह बात या नहीं। लेकिन आप समझ
गए होंगे। आप पहचान गए होंगे कि आदमी किस खूंटी से बंधा है। अहंकार के अतिरिक्त आदमी के जीवन में और कोई खूंटी नहीं है। और जो अहंकार से बंधा है वह और हजार तरह से बंध जाएगा। और जो अहंकार से मुक्त हो जाता है वह और सब भांति भी मुक्त हो जाता है। एक ही स्वतंत्रता है जीवन में, एक ही मुक्ति है, एक ही मोक्ष है और एक ही द्वार है प्रभु का और वह वह है अहंकारी की खूंटी से मुक्त हो जाना। एक ही धर्म है, एक ही प्रार्थना है, एक ही पूजा है और वह है अहंकार से मुक्त हो जाना। एक ही मंदिर है, एक ही मस्जिद है, एक ही शिवालय है। जिस हृदय में अहंकार नहीं वही मंदिर है, वही मस्जिद है, वही शिवालय है।
जीवन को देखने की दी दृष्टियां हैं और जीवन को जीने के दो ही ढंग हैं।
या तो अहंकार के इर्दगिर्द जियो या निरहंकार के। जो अहंकार से बंधा है वह पृथ्वी से बंधा रह जाता है। और निरहंकार में जो उठते हैं आकाश उनका हो जाता है। आकाश की स्वतंत्रता उनकी हो जाती है। जीवन में विराट तक पहुंचने का मार्ग खुल जाता है। क्यों? क्योंकि जो क्षुद्र से मुक्त होता है वह विराट से संयुक्त हो जाता है। यह तो गणित की तरह सीधा सा नियम है। यह तो एक सार्वभौम (न्नदपअमतेंस) नियम है। जो क्षुद्र से बंधा है वह विराट से वंचित हो जाएगा। और जो क्षुद्र से मुक्त हो जाता है वह विराट में प्रविष्ट हो जाता है।
एक पानी की बूंद थी। वह समुद्र होना चाहती थी। वह बूंद मुझसे पूछने लगी, मैं समुद्र कैसे हो जाऊंगी? मैंने उस बूंद को कहा, बड़ी छोटी और एक ही तरकीब है। बूंद अगर बूंद होने से राजी है, अगर बूंद, बूंद ही बनी रहने में सुखी है तो समुद्र से मिलने का कोई रास्ता नहीं है। लेकिन अगर तू बूंद की भांति मिटने को राजी हो जा तो मिटते ही सागर हो जाएगी। उस बूंद ने मेरी बात मान ली। वह सागर में कूद गई। उसे खो दिया अपने को। उसने अपने अहंकार को धो डाला। वह सागर से एक हो गई लेकिन उसने कुछ खोया नहीं। उस बूंद ने खोया बूंद होना और वह हो गई सागर। इसे कोई खोना कहेगा? इसे कोई मिटना कहेगा? अगर मिटना है तो फिर पाना और क्या हो सकता है।
हम अहंकार की खूंटी में बंधे हुए हैं और परमात्मा के सागर को खोजने निकल पड़े हैं। हम अहंकार की छोटी क्षुद्र बिंदु बने हुए हैं और विराट के, असीम के साथ एक होने की कामना ने हमें पीड़ित कर रखा है। हम भी इनके किनारे से बंधे हुए हैं और सागर की यात्रा, अज्ञात सागर की यात्रा का हमने स्वीकार कर लिया है। इन्हीं दोनों के बीच खिंच खिंच कर आदमी नष्ट हो जाता

है कबीर कहते थे, उसकी गली बहुत संकरी है, वहां दो नहीं समा सकेंगे। या तो वही हो सकता है या फिर हम हो सकते हैं।
हमारा सारा जीवन अहंकार को परिपुष्ट करने में व्यतीत होता है, विसर्जित करने में नहीं। हम उसे मजबूत करते हैं जो हमारी पीड़ा है। हम उसी घाव को गहरा करते हैं जो हमारा दुख है। हम उसी बीमारी को पान सींचते हैं जो प्राण लिए लेती है। अहंकार को सींचने के सिवाय हम जीवन भर और करते ही क्या है? किसलिए उठाते हैं यह मकान, आकाश को छू लेने वाले? आदमी के रहने के लिए? झूठी है यह बात। अहंकार का निवास बनाने के लिए, आदमी के रहने के लिए छोटे झोपड़े भी काफी हैं लेकिन अहंकार के लिए बड़े से बड़े मकान भी छोटे हैं। अहंकार उठाता है बड़े मकानों को कि आकाश छू लें। किसलिए विजय यात्राएं चलती हैं? किसलिए सिकंदर, नेपोलियन और चंगेज पैदा होते हैं? जीने से चंगेज का, सिकंदर का, नेपोलियन का क्या वास्ता? लेकिन नहीं, अहंकार की यात्राएं बड़ी दूर ले जाती हैं आदमी को।
सिकंदर जिस दिन मरने को था बहुत उदास था। किसी ने पूछा कि तुम इतने उदास क्योंकि हो? सिकंदर ने कहा कि मैं इसलिए उदास हूं कि सारी दुनिया को मैंने करीब करीब जीत लिया। अब बड़ी कठिनाई में मैं पड़ गया हूं। दूसरी कोई दुनिया ही नहीं जिसको मैं आगे जीतूं और अब मेरे भीतर बड़ा खालीपन मालूम होता है। क्योंकि जब तक मैं जीतता न रहूं तब तक मुझे कोई चैन नहीं और दुनिया समाप्त होने के करीब आ गई है। दूसरी कोई दुनिया नहीं है। मैं क्या जीतूं?
अहंकार दुनिया को जीत ले तो फिर दूसरी दुनिया को जीतने की आकांक्षा शुरू हो जाती है।
अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति कारनेगी मरणशैया पर पड़ था। एक मित्र
ने उससे पूछा कितनी संपत्ति तुमने जीवन में इकट्ठी की है? उसने कहा¬ज्यादा नहीं, केवल दस अरब। मित्र ने कहा¬दस अरब! और कहते हो ज्यादा नहीं! कारनेगी ने कहा, मेरे इरादे सौ अरब इकट्ठा करने के थे, लेकिन बुढ़ापा निकट आ गया, योजना अधूरी रही जाती है।
क्या आप सोचते हैं कि कारनेगी सौ अरब इकट्ठा कर लेता तो कोई फर्क पड़ जाता? जरा भी फर्क नहीं पड़ने वाला था। आदमी को हम भली भांति जानते हैं। फर्क जरा भी नहीं पड़ कसता था। कारनेगी के पास भी अरब इकट्ठे हो जाते तो कारनेगी के इरादे हजार अरब पर पहुंच जाते। आदमी का इरादा उसके आगे चलता है। आदमी की वासना उसके आगे चलती है। आदमी हमेशा पीछे रह जाता है। मंजिल जिसको वह छूना चाहता है और आगे हट जाती है। अहंकार दौड़ता है और दौड़ता है, लेकिन कहीं भी पहुंचता नहीं है। एक छोटी सी बच्चों की कथा है। अलाइस नाम की एक लड़की स्वर्ग में पहुंच गई, परियों के देश में। पृथ्वी से स्वर्ग तक पहुंचते पहुंचते बहुत थक गई थी। स्वर्ग में पहुंचते ही, परियों के देश में पहुंचते ही उसे दिखाई पड़ा कि दूर एक आम की घनी छाया के नीचे परियों की रानी खड़ी है और उसके पास फूलों के और मिठाइयों के थाल सजे हैं और वह रानी उस भूखी अलाइस को बुला रही है कि आ जाओ। वह दिखाई पड़ रही है। उसकी आवाज सुनाई पड़ती है कि अलाइस आ जा। अलाइस दौड़ना शुरू कर देती है। सुबह है, सूरज निकल रहा है। फिर दोपहर हो जाती है। सूरज ऊपर आ गया है और अलाइस दौड़ी चली जा रही है। अब वह थक गई है। उसने खड़ी होकर चिल्लाकर पूछा कि कैसी दुनिया है तुम्हारी! सुबह से मैं दौड़ रही हूं लेकिन मेरे और तुम्हारे बीच का फासला पूरा नहीं होता! तुम उतनी ही दूर मालूम पड़ती हो रानी! रानी ने चिल्लाकर कहा, घबरा मत, दौड़ती आ। जो दौड़ते हैं वे पहुंच जाते हैं। खड़ी होकर समय मत खो। थोड़ी देर में सूरज ढल जाएगा और सांझ आ जाएगी। दौड़ जल्दी आ।
अलाइस और तेजी से दौड़ने लगी। सूरज जैसे जैसे नीचे उतरने लगा अलाइस और तेज दौड़ रही है और तेज दौड़ रही है। लेकिन न मालूम कैसी पागल दुनिया है। रानी उतनी ही दूर, रानी और उसके बीच का फासला कम नहीं होता। फिर वह थक कर चकनाचूर होकर गिर पड़ती है और चिल्लाती है कि मामला क्या है? ये कैसे रास्ते हैं परियों के देश के कि मैं सुबह से दौड़ रही हूं, सूरज डूबने के करीब आ गया और अब तक तुम्हारे पास पहुंचा नहीं पाई। तुम उतनी दूर खड़ी हो जितनी सुबह थी? वह रानी खूब हंसने लगी। उसने कहा पागल! परियों के देश में

ही रास्ते ऐसे नहीं है, आदमियों के देश में भी रास्ते ऐसे ही हैं। लोग दौड़ते हैं, लेकिन पहुंचते कभी भी नहीं। फासला उतना ही बना रहता है।
जन्म के साथ आदमी जहां होता है मरने के साथ भी अपने को वहीं पाता है। कोई फासला पूरा नहीं होता, कोई यात्रा पूरी नहीं होती। जिस अहंकार को हम भरने चले हैं वह एकदम झूठी इकाई (थंसेम मदजपजल) है। वह होती तो भर भी जाती। वह होती तो हम उसे पूरा भी कर लेते। वह होती तो हम उसकी पूर्ति का कोई न कोई रास्ता खोज लेते। लेकिन अहंकार है झूठी इकाई। आदमी के भीतर अहंकार से ज्यादा बड़ा असत्य नहीं है। वह है ही हनीं। मैं जैसी कोई भी चीज शब्दों के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं है। और जिस दिन शब्दों को छोड़कर भीतर झांकेंगे तो वहां किसी मैं को नहीं पाएंगे। कभी किसी ने नहीं पाया है।
मैं एक शब्द मात्र है, मैं एक संज्ञा मात्र है, एक काम चलाऊं शब्द है। हमारे सभी शब्द काम चलाऊ हैं। एक आदमी का नाम हम रख लेते हैं। दूसरे लोगों के पुकारने के लिए नाम रख लेते हैं ताकि दूसरे लोग पुकारें तो पता चले कि किसको पुकार रहे हैं। दूसरे को पुकारने के लिए होता है नाम और खुद को पुकारने के लिए होती है मैं की इकाई, अन्यथा हम क्या पुकारें अपने आपको? कहते हैं मैं। यह शब्द काम दे देता है जीवन में। लेकिन यह शब्द झूठा है। इसके पीछे कोई भी सत्य नहीं है, यह बिल्कुल छाया है। इसके पीछे कोई भी वस्तु नहीं, कोई भी पदार्थ नहीं। यह बिल्कुल झूठी छाया है और इस छाया को हम घेरने में, दौड़ने में लगे रहते हैं, छाया को ही पकड़ने में लगे रहते हैं। एक संन्यासी एक घर के सामने से निकल रहा था। एक छोटा सा बच्चा घुटने टेक कर चलता था। सुबह थी और धूप निकली थी और उस बच्चे की छाया आगे पड़ रही थी। वह बच्चा छाया में अपने सिर को पकड़ने के लिए हाथ ले जाता है, लेकिन जब तक उसका हाथ पहुंचता है छाया आगे बढ़ जाती है। बच्चा थक गया और रोने लगा। उसकी मां उसे समझाने लगी कि पागल यह छाया है, छाया पकड़ी नहीं जाती। लेकिन बच्चे कब समझ सकते हैं कि क्या छाया है और क्या सत्य है? जो समझ लेता है कि क्या छाया और क्या सत्य, वह बच्चा नहीं रह जाता। वह प्रौढ़ होता है। बच्चे कभी नहीं समझते कि छाया क्या है, सपने क्या हैं, झूठ क्या है।
वह बच्चा रोने लगा। कहा कि मुझे तो पकड़ना है इस छाया के सिर को। वह संन्यासी भीख मांगने आया था। उसने उसकी मां को कहा, मैं पकड़ा देता हूं। वह बच्चे के पास गया। उस रोते हुए बच्चे की आंखों से आंसू टपक रहे थे। सभी बच्चों की आंखों से आंसू टपकते हैं। जिंदगी भर दौड़ते हैं और पकड़ नहीं पाते। पकड़ने की योजना ही झूठी है। बूढ़े भी रोते हैं और पकड़ नहीं पाते। पकड़ने की योजना ही झूठी है। बूढ़े भी रोते हैं और बच्चे भी रोते हैं। वह बच्चा भी रो रहा था तो कोई ना समझी तो नहीं कर रहा था। उस संन्यासी ने उसके पास जाकर कहा, बेटे रो मत। क्या करना है तुझे? छाया पकड़नी है? उस संन्यासी ने कहा, जीवन भर भी कोशिश करके थक जाएगी, परेशान हो जाएगा। छाया को पकड़ने का यह रास्ता नहीं है। उस संन्यासी ने उस बच्चे का हाथ पकड़ा और उसके सिर पर हाथ रख दिया। इधर हाथ सिर पर गया, उधर छाया के ऊपर भी सिर पर हाथ गया। संन्यासी ने कहा, देख, पकड़ ली तू ने छाया कोई सीधा पकड़ेगा तो नहीं पकड़ सकेगा। लेकिन अपने को पकड़ लेना तो छाया पकड़ में जा जाती है।
जो अहंकार को पकड़ने के लिए दौड़ता है वह अहंकार को कभी नहीं पकड़ पाता। अहंकार मात्र छाया है। लेकिन जो आत्मा को पकड़ लेता है, अहंकार उसकी पकड़ में आ जाता है। वह तो छाया है। उसका कोई मूल्य नहीं। केवल वे ही लोग तृप्ति को, केवल वे ही लोग आप्तकामता को उपलब्ध होत हैं जो आत्मा को उपलब्ध होते हैं। आत्मा और अहंकार के बीच चुनाव है। आत्मा और अहंकार के बीच सारा विकल्प है, आत्मा और अहंकार के बीच जीवन की सारी व्यथा, सारी पीड़ा है। जो अहंकार की तरफ जाते हैं वे भटक जाते हैं। वे गलत खूंटी के पास जीवन को घुमाते हैं। लेकिन जो अहंकार से पीछे हटते हैं और उसकी तरफ जाते हैं जो मूल है जो भीतर है, जो मैं हूं वस्तुतः, जो मेरी आत्यंतिक सत्ता है, उसे उपलब्ध हो जाते हैं और उनके लिए छायाएं देखने को नहीं रह जाती। दुनिया में दो ही तरह की यात्राएं हैं¬अहंकार को भरने की यात्रा है और आत्मा को उपलब्ध करने की यात्रा है। लेकिन अहंकार से जो बंध जाते हैं वे आत्मा से वंचित रह जाते हैं।

यह अहंकार क्या हम छोड़ने की कोशिश करें? नहीं, अगर छोड़ने की कोशिश की
तो अहंकार से कभी मुक्त नहीं हो सकेंगे। छाया न तो पकड़ी जा सकती है और न छोड़ी जा सकती है। जो चीज छोड़ी जा सकती है वह पकड़ी भी जा सकती है। अहंकार न पकड़ा जा सकता है, न छोड़ा जा सकता है। इसलिए पकड़ने वाले तो भूल में पड़ते हैं। छोड़ने वाले और भी भूल में पड़ जाते हैं। अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। छाया बड़ी सूक्ष्म हैं, पकड़ में नहीं आती और छोड़ने में भी नहीं आती। जो लोग सोचते हैं कि अहंकार छोड़ देंगे वे और भी बड़ी भूल में पड़ जाते हैं। आज तक किसी ने अहंकार को छोड़ा नहीं है। क्योंकि अहंकार पकड़ा भी नहीं जा सकता और छोड़ा भी नहीं जा सकता। तो फिर हम क्या करें।
अहंकार जाना जा सकता है, अहंकार पहचाना जा सकता है, अहंकार की प्रत्यभिज्ञा (त्तमबवहदपजपवद) हो सकती है, अहंकार का बोध हो सकता है अहंकार के प्रति जागरूक हो सकते हैं। और जो आदमी अहंकार के प्रति जागरूक हो जाता है उसका अहंकार विसर्जित हो जाता है। मनुष्य की निद्रा में अहंकार है, मनुष्य के जागरण में नहीं। जैसे ही कोई जाग कर देखने की कोशिश करता है, कहां है अहंकार, वैसे ही अंधकार हटने लगता है।
एक गांव में एक घर था। उस घर में बड़ा अंधकार था और कोई हजार साल से अंधेरा था। उस गांव के लोग उस घर में नहीं जाते थे। मैं उस गांव में गया। मैंने कहा, इस घर को ऐसा ही क्यों छोड़ रखा है। गांव वालों ने कहा, इस घर में हजारों साल से अंधेरा है। मैंने कहा, अंधेरे की कोई ताकत होती है? दिया जलाओ और भीतर पहुंच जाओ। उन्होंने कहा¬दिया जलाने से क्या होगा? यह कोई एक रात का अंधेरा नहीं हैं, हजारों साल का अंधेरा है। हजारों साल तक दिए जलाओ तब कहीं खत्म हो सकता है। गणित बिल्कुल ठीक था। बिल्कुल तर्कसंगत थी यह बात। मैं भी डरा। बात तो ठीक थी। हजारों साल में घिरा अहंकार कहीं एक दिन के दिए जलाने से दूर हो सकता है? फिर भी मैंने कहा, एक कोशिश तो करके देख ही लें। क्योंकि जिंदगी में कई बार गणित काम नहीं करता और तर्क व्यर्थ हो जाता है। जिंदगी बड़ी अनूठी है। वह तर्कों के पास से चली जाती है और गणित से दूर निकल जाती है। गणित में हमेशा दो और दो चार होते हैं, जिंदगी में कभी पांच भी हो जाते हैं और तीन भी हो जाते हैं। जिंदगी गणित नहीं है। तो चलें देख लें।
वे लोग राजी नहीं हुए और कहा कि जाने से फायदा क्या है? हमें नहीं पसंद
है यह बात। हमारे बाप दादा भी यही कहते थे। उन्होंने कहा कि दिए मत जलाना। हजारों साल का अंधेरा है। उनके बाप दादों ने भी यही कहा था और आप तो बड़े परंपरा के विरोधी मालूम होती हैं। आप शास्त्रों को नहीं मानते।
बुजुर्गों को नहीं मानते हैं। हम नासमझ हैं? हमारे गांव में तो लिखा हुआ रखा है कि इस घर में दिया मत जलाना यह हजारों साल का पुराना अंधेरा है, मिट नहीं सकता। फिर भी मैंने उन्हें बामुश्किल राजी किया कि चलो देख तो लें। बहुत से बहुत यही होगा कि हम असफल होंगे। मुश्किल से वे जाने को राजी हुए। दिया जलते ही वहां तो कोई भी अंधेरा नहीं था। वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, कहां गया अंधेरा! मैंने कहा, दिया तुम्हारे हाथ में है खोजें कि कहां है अंधेरा। और अगर किसी दिन मिल जाए तो मुझे खबर कर दें, मैं फिर तुम्हारे गांव में आ जाऊं। अभी तक उनकी कोई खबर नहीं आयी। खोज रहे होंगे वे लोग दिए लेकर अंधेरे को और कहीं दिए के सामने अंधेरा आता है? कहीं में अंधेरा मिलता है।
अहंकार अंधकार के समान है। जो अपने भीतर दिए को लेकर जाता है वह उसे कहीं भी नहीं पाता। न तो उसे छोड़ना है न उससे भागना है। एक दिया जलाना है और उसे देखना है, उस दिए की रोशनी में ढूंढ़ना है कि वह कहां है? हमें भीतर जागकर देखना है कि कहां है अहंकार? और वह वहां नहीं पाया जाता है। और जहां अहंकार नहीं पाया जाता है वहां जो मिल जाता है उसी को कोई परमात्मा कहता है, कोई आत्मा कहता है, कोई सत्य कहता है। उसी को कोई सौंदर्य कहता है उसी को कोई और नाम देता है। लेकिन बस नामों के ही भेद होते हैं। अहंकार जहां नहीं है वहां वह मिल जाता है जो सबके प्राणों का प्राण है, जो प्यारे से प्यारे है। लेकिन हम अहंकार से बंधे हैं और उसी के साथ जीते और मरते हैं

इसलिए आत्मा कील तरफ आंख नहीं जा पाती। इसे देखना जरूरी है, इसे छोड़ना जरूरी नहीं है। इससे भागना जरूरी नहीं है, इसे पहचानना जरूरी है।
अहंकार को देखने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है। कैसे हम देखें इसे
जो कि हमें घेरे हुए है और पकड़े हुए हैं? क्या है रास्ता? कोई घड़ी आधी घड़ी किसी मंदिर मैं बैठ जाने से यह नहीं देखा जा सकता। मंदिर में बैठने वालों का अहंकार तो और भी मजबूत हो जाता है, क्योंकि उन्हें ख्याल होता है कि हम धार्मिक हैं। बाकी सारा जगत अधार्मिक है। क्योंकि हम मंदिर जाते हैं और हमारा स्वर्ग बन जाता है और बाकी सब नर्क में खड़े हैं।
क्या आपको पता है ईसाई मजहब के हिमायतियों की राय है कि जो लोग संत पुरुष हैं, जो धार्मिक पुरुष हैं वे लोग स्वर्ग के आनंद उठाएंगे। जो पापी हैं वे नर्क में कष्ट भोगेंगे और स्वर्ग में जो धार्मिक लोग जाएंगे उन्हें एक विशेष प्रकार के सुख की भी सुविधा रहेगी और वह यह है कि नर्क में जो पापी कष्ट भोग रहे हैं उनको देखने का मजा भी वे ले सकेंगे। वहां से वे देख सकेंगे कि कितने पापी नर्क में पड़ गए और कैसे कैसे कष्ट झेल रहे हैं। जिन लोगों ने यह ख्याल किया होगा पुण्यात्माओं ने, धार्मिकों ने कि पापियों को नर्क में कड़ाहों में जलते हुए देखने का मजा भी हम लेंगे, वे कैसे लोग रहे होंगे इसे आप भलीभांति सोच सकते हैं। और यह कोई ईसाइयत का सवाल नहीं है। दुनिया के सारे तथाकथित धार्मिक लोगों ने अपने को स्वर्ग में ले जाने की और दूसरे को नर्क में डालने की पूरी योजना और व्यवस्था कर रखी है। क्योंकि वह यह कह सकते हैं भगवान को कि मैं रोज तुम्हारे नाम पर माला फेरता था और इस आदमी ने माला नहीं फेरी। इसको डालो कड़ाहे में। मैं रोज मंदिर आता था। एक दिन भी नहीं चूका। सर्दी पड़ती थी तब भी आता था, धूप पड़ती थी तब भी आता था। यह आदमी कभी मंदिर में नहीं दिखाई पड़ा। डाली इसको कड़ाहे में। मैं गीता पढ़ता था, कुरान पढ़ता था, बाइबिल पढ़ता था। रोज तुम्हारे भजन कीर्तन करता था। क्या वे सब व्यर्थ गए? मुझे बैठाओ स्वर्ग में। लेकिन मुझे मजा इतने भर में नहीं आएगा कि मैं स्वर्ग में बैठ जाऊं। उन सब लोगों को जो मेरे पड़ोस में रहते थे बिना नर्क में पड़े देखे मुझे कोई आनंद उपलब्ध नहीं हो सकता। उन सबको डालो नर्क में।
जर्मन कवि था ह्यूम। उसने एक कविता लिखी है। उस कविता में लिखा है कि
एक रात भगवान ने मुझसे पूछा कि तुम चाहते क्या हो? जिससे तुम खुश हो जाओ। तो मैंने कहा मैं बहुत बड़ा मकान चाहता हूं। जैसा गांव में दूसरा मकान न हो। भगवान ने कहा ठीक है यह हो जाएगा। और क्या चाहते हो? एक बहुत शानदार बगीचा चाहता हूं जैसा पृथ्वी पर न हो। भगवान ने कहा ठीक, यह भी हो जाएगा। और क्या चाहते हो? मैं जो भी जिस क्षण चाहूं उसी वक्त मुझे मिल जाए। भगवान ने कहा यह भी हो जाएगा। और क्या चाहते हो? ह्यूम ने कहा अगर आप मानते ही नहीं और मेरे दिल की आखिरी मुराद पूरी ही करना चाहते हैं तो एक काम और कर दें। मेरे बगीचे के दरख्त जो हों, मेरे पड़ोसी उन दरख्तों से लटके रहें तो मुझे पूरा आनंद उपलब्ध हो जाएगा। नींद खुल गई ह्यूम की और उसने बाद में लिखा कि वह बहुत घबराया कि मेरे भीतर भी कैसी कैसी कामनाएं हैं। लेकिन अगर आप धार्मिक आदमियों के मन में खोजेंगे तो सबके मन में यह कामना है कि पड़ोसी नर्क में चले जाए और हम स्वर्ग में चले जाए। उस स्वर्ग में जाने के लिए सारा आयोजन करते हैं। मंदिर में बैठने वाले अहंकार से मुक्त नहीं होते। स्वर्ग में जाने की कामना रखने वाले अहंकारी ही हैं। मुझे परमात्मा मिल जाए, मैं परमात्मा को भी अपने अधिकार में कर लूं वह भी मेरी संपत्ति बन जाए, यह अहंकार की ही दौड़ है।
फिर क्या करें? चौबीस घंटे जागरूक होना पड़ता है और देखना पड़ता है कि जीवन की किन किन क्रियाओं में अहंकार खड़ा होता है। क्या वस्त्रों के पहनने से खड़ा होता है? आंख के देखने के ढंग में खड़ा होता है? पैर के उठने में खड़ा होता है, बोलने में खड़ा रहता है कि चुप रह जाने में खड़ा होता है? कहां कहां अहंकार खड़ा होता है? किन किन जगहों से सिर उठाता है? चौबीस घंटे एक होश (ःूंतमदमे) चाहिए कि कहां खड़ा हो रहा है? चौबीस घंटे खोजबीन चाहिए दिया लेकर कि अहंकार कहां खड़ा होता है? कैसे खड़ा होता है? क्या है उसकी कोशिश? उसके खड़े होने की प्रक्रिया क्या है? कैसे निर्मित होता है भीतर?

कैसे संगठित होता है? क्या मार्ग है उसके बन जाने का? और अगर चौबीस घंटे कोई देखता रहे, देखता रहे, खोजता रहे, खोजता रहे तो बहुत हैरानी, बहुत आश्चर्य, बहुत चमत्कार अनुभव करेगा। जिन जिन जगहों पर यह खोज लेंगे कि यहां अहंकार खड़ा होता है वहीं वहीं से अहंकार बिदा हो जाएगा। और जिस दिन जीवन के सभी पहलुओं में, और चित्त के सभी हिस्सों में अहंकार की खोज पूरी हो जाएगी और मन का कोई अनजान अपरिचित कोना बाकी नहीं रहेगा, उसी दिन आप अहंकार के बाहर हो जाते हैं।
एक सम्राट था। एक फकीर ने उस सम्राट को कहा तू अगर चाहता है कि परमात्मा को पा ले तो एक ही रास्ता है। मेरे झोपड़े पर आ जा और कुछ दिन मेरे पास रह जा। उस सम्राट की बड़ी तीव्र प्यास और आकांक्षा थी। वह उस फकीर के झोपड़े पर चला गया। उस फकीर ने कहा, कल सुबह तेरी शिक्षा शुरू होगी और शिक्षा बड़ी अजीब है। शिक्षा यह है कि कल सुबह तू कुछ भी कर रहा होगा और मैं लकड़ी की तलवार लेकर तेरे पीछे से हमला कर दूंगा। तू खाना खा रहा होगा, तू झोपड़े में बुहारी लगा रहा होगा, तू कपड़े धो रहा होगा, तू स्नान करता होगा और मैं तेरे ऊपर तलवार से हमला कर दूंगा। लकड़ी की तलवार के होगी। हमेशा सावधान रहना कि मैं कब हमला करता हूं। क्योंकि मेरा कोई ठिकाना नहीं। मैं कोई खोज खबर नहीं दूंगा। पहले से रेडियो में कोई खबर नहीं निकालूंगा। अखबार में स्थानीय कार्यक्रम में खबर नहीं होगी कि आज मैं यह करने वाला हूं। यह कोई खबर नहीं होगी। किसी भाषा में कोई सिलसिला नहीं होगा। किसी भी क्षण में हमला कर दूंगा। तैयार रहना।
उस सम्राट ने कहा, लेकिन इससे मतलब क्या है? वह फकीर बोला अहंकार इसी भांति चौबीस घंटे न मालूम कहां कहां से हमले कर दे। तो मैं हमला करूंगा। मेरी तलवार का ख्याल रखना। सात दिन में सम्राट की हड्डी पसलियां टूट गई। क्योंकि चौबीस घंटे तक वह बूढ़ा फकीर हर कभी हमला करने लगा। लेकिन सात दिन में सम्राट को यह भी ख्याल में आ गया कि सावधानी जैसी भी कोई चीज थी। पहली दफा जिंदगी में उसे पता चला कि मैं अभी तक सोया जीता रहा। अभी तक मैं होश से नहीं जीया। कभी मैंने होश का ख्याल ही नहीं किया। लेकिन सात दिन बराबर चुनौती मिली, चोट पड़ी और भीतर कोई चीज जागने लगी और ख्याल रखने लगी कि हमला होने को है। पंद्रह दिन पूरे हो गए थे; हमले की खबर उसे मिलने लगी। गुरु के पैर की धीमी सी आहट भी उसे सुनाई पड़ जाती थी। वह अपनी ढाल संभाल लेता और हमले से बच जाता।
तीन महीने पूरे हो गए। अब हमला करना मुश्किल हो गया। किसी भी हालत
में हमला किया जाए, वह हमेशा सावधान होता और रोक लेता। उसके गुरु ने कहा एक पाठ तेरा पूरा हो गया। कल से दूसरा पाठ शुरू होगा। उसने पूछा कि इन तीन महीनों में तुझे क्या हुआ? तो सम्राट ने कहा दो बातें हुई। मैं हैरान हो गया। पहले तो मैं डर गया था कि इस लकड़ी की तलवार से चोट पहुंचाने का और परमात्मा से मिलने का क्या रास्ता है, क्या संबंध है! यह पागल तो नहीं है फकीर। मैं किसी पागल के चक्कर में तो नहीं पड़ गया हूं? लेकिन तीन महीने में मुझे पता चला कि जितना मैं सावधान रहने लगा उतना ही मैं निरहंकारी हो गया। जितना मैं सावधान रहने लगा उतना ही निर्विचार हो गया। जितना ही मैं होश से जीने लगा उतनी ही मन के विचारों की धारा क्षीण हो गई। मन एक ही साथ दो काम नहीं कर सकता। या तो विचार कर सकता है या जागरूक हो सकता है। दो चीजें एक साथ नहीं हो सकती। इसको थोड़ा देखना। जब विचार होंगे, सावधानी क्षीण हो जाएगी। जब सावधानी होगी, विचार क्षीण हो जाएंगे। अगर मैं एक छुरी लेकर आपकी छाती पर आ जाऊं तो विचार एकदम बंद हो जाएंगे। क्योंकि खतरे में चित्त पूरी तरह सावधान हो जाएगा कि पता नहीं क्या होगा? इस समय विचार करने की सुविधा नहीं है, इस समय तो होश बनाए रखने की जरूरत है कि पता नहीं क्या होगा? एक क्षण में कुछ भी हो सकता है तो आप जाग जाएंगे।
तो उस सम्राट ने कहा कि मैं एकदम जागा हुआ हो गया हूं। विचार शांत होगे, अहंकार का कोई पता नहीं चलता। दूसरा पाठ क्या है?
उस वृद्ध फकीर ने कहा¬कल से रात में भी हमला शुरू होगा। कल तू रात में सोया रहेगा तक भी दो चार दफा सामने आऊंगा। अब रात को भी सावधान रहना। उस सम्राट ने कहा, जागने तक भी गनीमत थी। अब यह बात जरा ज्यादा हो जाती है।

नींद में मैं क्या करूंगा? मेरा क्या बस है नींद में? वृद्ध ने कहा, नींद में भी बास है, तुझे पता नहीं। नींद मग भी तेरे भीतर कोई जागा हुआ है और होश में है। चादर सरक जाती है और किसी को नींद में पता चल जाता है कि चादर सरक गयी है। एक छोटा सा मच्छर कान लगता और नींद में कोई जान लेता है कि मच्छर आ गया है। एक मां रात में सोती है उसका बच्चा बीमार है। आकाश में बादल गरजते रहें उसे कोई खबर नहीं मिलती लेकिन बच्चा बीमार है, वह जरा सी आवाज करता है और मां जाग जाती है और हाथ फेरने लगती है और पुचकारने लगती है कि सो जा कोई भीतर होश से भरा हुआ है कि बच्चा बीमार है।
बहुत लोग इकट्ठे सो जाएं और फिर आधी रात में आकर कोई बुलाने लगे राम! राम! सारे लोग सो रहे हैं, किसी को सुनायी नहीं पड़ेगा लेकिन जिसका नाम राम है वह आंख खोलकर कहेगा, कौन बुलाता है? आधी रात को कौन परेशान करता है? आधी रात की निद्रा में भी किसी को पता है कि मेरा नाम राम है। इस नींद में भी कोई होश, कोई चेतना (बवदेबपवनेदमे) बनी रहती है। कोई चेतना है, कोई अंतर्धारा (न्नदकमत(बनततमदज) है। उस बूढ़े ने कहा फिकर मत कर। हम तो चुनौती खड़ी करेंगे, भीतर जो सोया है वह जागना शुरू हो जाएगा। जागने का एक ही सूत्र है चुनौती (ींंससमदहम)। जितनी बड़ी चुनौती भीतर है, उतना बड़ा जागरण होता है। कितने धन्यभागी हैं वे लोग जिनके जीवन में बड़ी चुनौतियां होती है। दूसरे दिन से हमला शुरू हो गया। रात सम्राट सोता और हमले होते। आठ दस दिन में फिर वही हालत हो गई। फिर हड्डी हड्डी दुखने लगी लेकिन एक महीना पूरा होते होते सम्राट को पता चला कि बूढ़ा ठीक कहता है। बूढ़े अक्सर ठीक कहते हैं। लेकिन जवान सुनते ही नहीं। और जब तक उन्हें समझ आती है तब तक वे भी बूढ़े हो जाते हैं। फिर दूसरी जवानी उन्हें लौट नहीं सकती। तो समझा और उठने कहा कि ठीक कहते थे शायद आप। अब नींद में भी मेरे साथ संभलने लगे। रात नींद में गुरु आता दबे पांव, नींद में से जाग आता वह युवक, बैठ जाता और कहता ठीक है माफ करिए मैं जाग गया हूं। अब कष्ट मत उठाइए मारने का। नींद में भी हाथ रात भर उसकी ढाल पर ही बना रहता था। नींद मग भी ढाल उठती है।
तीन महीने पूरे हुए और तब नींद में भी हमला करना मुश्किल हो गया। गुरु
ने कहा कि क्या हुआ इन तीन महीनों में। दूसरा पाठ पूरा होता है। उस सम्राट ने कहा बड़ा हैरान हूं। पहले तीन महीने में विचार खो गया, दूसरे तीन महीने में सपने खो गए, नींद खो गई, रात भर सपने नहीं। मैं तो सोचता था कि बिना सपने के नींद ही नहीं हो सकती। अब मैं जानता हूं कि सपने वालों की भी कोई नींद होती है? अदभुत शांति छा गई है भीतर, एक शून्यता, एक मौन पैदा हो गया है। मैं बड़े आनंद में हूं। तो उसके गुरु ने कहा जल्दी मत कर। बड़ा आनंद अभी थोड़ी दूर है। यह तो केवल आनंद की शुरुआत की झलक है। जैसे कोई आदमी बगीचे के पास पहुंचने लगे तो ठंडी हवाएं आने लगती हैं, खुशबू हवा में आ जाती है। अभी बगीचा आया नहीं लेकिन बगीचे की खबर आनी शुरू हो गई है। अभी आनंद मिला नहीं। केवल बाहरी खबर मिलनी शुरू हुई है। कल से तेरा तीसरा पाठ शुरू होगा। तीसरा पाठ क्या है? तो उस बूढ़े ने कहा, कल से असली तलवार से हमला होगा।
अब तक नकली तलवार से हमला किया है। वह युवक बोला यह भी गनीमत थी कि अपनी लकड़ी की तलवार से हमला करते थे। यह तो जरा ज्यादा हो जाएगी बात। असली तलवार से हमला! अगर मैं एक भी बार चूक गया तो जान गई। तो उस बूढ़े ने कहा, जब यह पक्का पता हो कि एक भी बार चूका कि जान गई तब कोई भी नहीं चूकता है। चूकता आदमी तभी तक है जब तक उसे पता चलता है कि चूक भी जाऊं तो कुछ जाएगा नहीं। एक बार पता चला कि चूका कि जान गई तब प्राण इतनी ऊर्जा से चलते हैं कि फिर चूकने का कोई मौका नहीं रहता।
उस बूढ़े ने कहा, मेरा गुरु था। जिसके पास मैं सीखता था, उसने मुझे एक दिन सौ फूट ऊंचे दरख्त पर चढ़ा दिया। वह मुझे दरख्त पर चढ़ना सिखाता, पहाड़ों पर चढ़ना सिखाता, नदियों में तैरना सिखाता, झीलों में डूबना सिखाता। वह बड़ा अजीब गुरु था। वह कहता था जो पहाड़ पर चढ़ना नहीं जानता है वह जीवन में चढ़ना क्या जानेगा? जो झीलों की गहराइयों में डूबना नहीं जानता वह प्राणों की गहराइयों में डूबना क्या जानेगा? वह बड़ा अजीब गुरु था। उसने मुझे एक दरख्त पर चढ़ा दिया। मैं नया-नया चढ़ा था। जब मैं सौ फूट ऊपर पहुंच गया और मेरे प्राण कंपते थे कि हवा का एक झोंका भी कहीं जान लेने वाला न बन जाए, पैर का

जरा सार सकर जाना भी मौत न बन जाते तब वह गुरु चुपचाप आंख बंद किए झाड़ के पास बैठा था। फिर मैं धीरे धीरे उतरने लगा। जब मैं जमीन के बिल्कुल करीब आ गया कोई आठ दस फूट दूर रह गया तक वह बूढ़ा जैसे नींद से उठ गया और खड़ा हो गया और कहने लगा¬सावधान! बेटे संभलकर उतरना! होश संभालकर उतरना। मैंने कहा, पागल हो गए हैं आप! जब जरूरत थी सावधानी की, तब आंख बंद किए सपने देख रहे थे और अब जब कि मैं नीचे आ गया हूं, अगर गिर भी जाऊं तो कोई खतरा नहीं है तब आपको होशियार की याद दिलाने का ख्याल आया? वह बूढ़ा कहने लगा मैं अपने अनुभव से जानता हूं जब तू सौ फूट पर था तब किसी के सावधान करने की कोई जरूरत नहीं थी। तब तू खुद ही सावधान था। और अभी अभी मैंने देखा है कि जैसे जैसे जमीन करीब आने लगी है, तुम गैर सावधान होना शुरू हो गए। नींद पकड़ गई है तुझे। मैं चिल्लाया कि सावधान। क्योंकि मैंने जीवन में देखा है कि लोग ऊंचाई से कभी नहीं गिरते, नीचे आने से गिर जाते हैं और मर जाते हैं। मैंने आज तक जिंदगी में देखा नहीं कि कोई आदमी ऊंचाई से गिरा हो। लोग नीचाई से गिरते हैं और मर जाते हैं इसलिए तुम सावधान कर दिया।
उस बूढ़े ने सम्राट से कहा कि कल से असली तलवार आती है। और दूसरे दिन से असली तलवार आ गई। लेकिन बड़ा हैरान हुआ वह सम्राट। लकड़ी की तलवार की तो बहुत चोटें उसके शरीर पर लगी थी लेकिन असली तलवार की तीन महीने में एक भी चोट नहीं मारी जा सकी। तीन महीने पूरे होने को आ गए। उसका मन एक शांति का सरोवर हो गया। उसका अहंकार कहीं दूर हट गया किसी रास्ते पर। पता नहीं कहां रह गया। जैसे जीर्ण शीर्ण वस्त्र छूट जाते हैं या सांप अपने केंचुल को छोड़कर जैसे आगे बढ़ जाते हैं ऐसे ही वह अपने अहंकार को कहीं पीछे दौड़ आया। याद भी नहीं रहा कि कभी मैं भी था। इतनी शांति हो गई है कि वहां कोई लहर भी नहीं उठती है उस झील में।
तीन महीने पूरे होने को आ गए। हैं। आज आखिरी दिन है। कल वह बिदा हो जाएगा। सुबह सुबह सूरज निकलता है। वह बैठा है झोपड़े के बाहर। उसका गुरु काफी दूर पर एक दरख्त के नीचे बैठा है और कोई किताब पढ़ रहा है, वह अस्सी साल का वृद्ध। उसके मन में ख्याल आया कि इस बूढ़े ने नौ महीने तक मुझे एक क्षण भी आलस्य में नहीं जाने दिया। एक क्षण भी प्रसाद नहीं करने दिया। हमेशा जगाए रखा, सावधान रखा। कल तो मैं बिदा हो जाऊंगा। यह गुरु भी उतना सावधान है या हनीं यह भी तो मैं दुख लूं। तो उसने सोचा कि उठाऊं तलवार और आज उस बूढ़े पर पीछे से चुपचाप हमला कर दूं। मुझे भी तो पता चल जाए कि हमें ही सावधान किया जाता है या ये सज्जन खुद भी सावधान हैं?
उसने इतना सोचा ही था, सिर्फ सोचा ही था। अभी कुछ किया नहीं था, बस सोचा ही था कि वह गुरु चिल्लाया उस झाड़ के नीचे से कि बेटा ऐसा मत करना, मैं बूढ़ा आदमी हूं। वह सम्राट तो बहुत हैरान हुआ। उसने कहा मैंने कुछ किया नहीं। मैंने केवल सोचा है। तो उस बूढ़े ने कहा, तुम थोड़े दिन और ठहर जाओ जब चित्त बिल्कुल शांत हो जाता है और मौन हो जाता है, जब अहंकार बिल्कुल बिदा हो जाता है और जब विचार शून्य और शांत हो जाते हैं, तब दूसरे के पैरों की ध्वनि ही नहीं सुनाई पड़ती, दूसरों के चित्त की पद ध्वनियां भी सुनाई पड़ने लग जाती हैं। तब दूसरों के विचारों की पगध्वनियां भी सुनाई पड़ने लग जाती हैं। विचार भी सुनाई पड़ने लगते हैं दूसरों के। लेकिन हम तो ऐसे अंधे हैं कि हमें दूसरों के कृत्य ही दिखाई नहीं पड़ते। विचार सुनाई पड़ना तो बहुत दूर की बात है।
उस बूढ़े ने कहा था जिस दिन इतना शांत हो जाता है चित्त, इतना जागरूक हो जाता है, तो उस दिन ही वह जो अदृश्य है उसकी झलक मिलती है। उस परमात्मा के पैर सुनाई पडने लगते हैं जिसके कोई पैर नहीं हैं। उस परमात्मा की वाणी आने लगती है जिसकी कोई वाणी नहीं है। उस परमात्मा का स्पर्श मिलने लगता है जिसकी कोई देह नहीं है। सब तरफ से वह मौजूद हो जाता है। जिस दिन हमारे भीतर शांति की वह ग्राहकता उत्पन्न होती है उसी दिन वह सब तरफ मौजूद हो जाता है। फिर वृक्ष की पत्तियों में वही है, राह के पत्थरों में वही है, सागर की लहरों में भी, आकाश के बादलों में भी, आदमियों की आंखों में भी, पशु पक्षियों के प्राणों में भी, फिर सब में वही है। जिस दिन भीतर जीवन की

प्रतिध्वनि सुनने की ग्राहकता (त्तमबमचजपअपजल) उपलब्ध हो जाती है, पात्रता उपलब्ध हो जाती है उसी दिन उसके दर्शन मिलने शुरू हो जाते हैं। पता नहीं उस सम्राट का फिर क्या हुआ। पहा नहीं उस बूढ़े फकीर का फिर क्या हुआ लेकिन मुझे और आपको उससे प्रयोजन ही क्या है। जहां उनकी कहानी खतम होती है अगर वहीं आपकी कहानी शुरू हो जाए तो बात पूरी हो जाएगी।
क्या आप भी अपने भीतर इतने जागने का सतत श्रम करने को तत्पर हैं? अगर हां तो जीवन की संपदा आपकी है। अगर हां तो परमात्मा खुद आपके द्वार चला आएगा। आपको उसके द्वार जाने की जरूरत नहीं। यह बात कठिन मालूम पड़ सकती है क्योंकि जो लोग चलने के आदी नहीं होते, यात्राएं उन्हें बहुत बड़ी और जटिल दिखाई देती हैं। उन्हें डर लगता है कि छोटे से पैर हैं अपने पास। हजारों मील की यात्रा हम कैसे पूरी कर सकेंगे? लेकिन अगर एक कदम भी उठाने के लिए वे तैयार हो गए तो हर उठाया गया कदम आने वाले कदम के लिए भूमि बन जाता है, बल बन जाता है, शक्ति बन जाता है और छोटे से कदमों से आदमी पूरी पृथ्वी की परिक्रमा कर सकता है और छोटे से मन की सामर्थ्य, छोटे से कामों की सावधानी, थोड़े से हृदय की शांति से मनुष्य परमात्मा की परिक्रमा भी कर सकता है।

प्रेम है द्वार प्रभु का सातवां प्रवचन

प्रेम है द्वार प्रभु का

मनुष्य की आत्मा, मनुष्य के प्राण निरंतर ही परमात्मा को पाने के लिए आतुर हैं। लेकिन किस परमात्मा को, कैसे परमात्मा को? उसका कोई अनुभव, उसका कोई आकार, उसकी कोई दिशा मनुष्य को ज्ञात नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा अनुभव है जो मनुष्य को ज्ञात है और जो परमात्मा की झलक दे सकता है। वह अनुभव प्रेम का अनुभव है। और जिसके जीवन में प्रेम की कोई झलक नहीं है उसके जीवन में परमात्मा के आने की संभावना नहीं है। न तो प्रार्थनाएं परमात्मा तक पहुंचा सकती हैं, न धर्मशास्त्र पहुंचा सकते हैं, न मंदिर, मस्जिद पहुंचा सकते हैं, न कोई संगठन हिंदू और मुसलमानों के, ईसाइयों के, पारसियों के पहुंचा सकते हैं।
एक ही बात परमात्मा तक पहुंचा सकती है और वह यह है कि प्राणों में प्रेम की ज्योति का जन्म हो जाए। मंदिर और मस्जिद तो प्रेम की ज्योति को बुझाने का काम करते हैं। जिन्हें हम धर्मगुरु कहते हैं, वे मनुष्य को मनुष्य से तोड़ने के लिए जहर फैलाते रहे हैं। जिन्हें हम धर्मशास्त्र कहते हैं, वे घृणा और हिंसा के आधार और माध्यम बन गए हैं। और जो परमात्मा तक पहुंचा सकता था वह प्रेम अत्यंत उपेक्षित होकर जीवन के रास्ते के किनारे अंधेरे में कहीं पड़ा रह गया है। इसलिए पांच हजार वर्षों से आदमी प्रार्थनाएं कर रहा है, पांच हजार वर्षों से आदमी भजन पूजन कर रहा है, पांच हजार वर्षों से मस्जिदों और मंदिरों की मूर्तियों के सामने सिर टेक रहा है, लेकिन परमात्मा की कोई झलक मनुष्यता को उपलब्ध नहीं हो सकी, परमात्मा की कोई झलक मनुष्यता को उपलब्ध नहीं हो सकी, परमात्मा की कोई किरण मनुष्य के भीतर अवतरित नहीं हो सकी। कोरी प्रार्थनाएं हाथ में रह गई हैं और आदमी रोज रोज नीचे गिरता गया है, और रोज रोज अंधेरे में भटकता गया है। आनंद के केवल सपने हाथ मग रह गए हैं, सच्चाइयां अत्यंत दुखपूर्ण होती चली गयी हैं। और आज तो आदमी करीब करीब ऐसी जगह खड़ा हो गया है जहां उसे यह ख्याल भी लाना असंभव होता जा रहा है कि परमात्मा भी हो सकता है। क्या आपने कभी सोचा है कि यह घटना कैसे घट गई है? क्या नास्तिक इसके लिए जिम्मेदार हैं? या कि लोगों की आकांक्षाएं और अभीप्साएं ही परमात्मा की दिशा की तरफ जाना बंद हो गई है? या कि वैज्ञानिक और भौतिकवादी लोगों ने परमात्मा के द्वार बंद कर दिए हैं? नहीं, परमात्मा के द्वार इसलिए बंद हो गए हैं कि परमात्मा का एक ही द्वार था प्रेम, और उस प्रेम की तरफ हमारा कोई ध्यान नहीं रहा है। और भी अजीब, कठिन और आश्चर्य की बात यह हो गई है कि तथाकथित धार्मिक लोगों ने मिल जुलकर प्रेम की हत्या कर दी और मनुष्य को जीवन में इस भांति सुव्यवस्थित करने की कोशिश की कि उसमें प्रेम की किरण के जन्म की कोई संभावना ही न रह जाए।
प्रेम के अतिरिक्त मुझे कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता है जो प्रभु तक पहुंच सकता हो। और इतने लोग जो वंचित हो गए है प्रभु तक पहुंचने से, वह इसीलिए कि वे प्रेम तक पहुंचने से ही वंचित रह गए हैं। समाज की पूरी व्यवस्था अप्रेम की व्यवस्था है। परिवार का पूरा का पूरा केंद्र अप्रेम का केंद्र है। बच्चे के गर्भाधान (ींवदबमचजपवद) से लेकर उसकी मृत्यु तक की सारी यात्रा अप्रेम की यात्रा है। और हम इसी समाज को, इसी परिवार को, इसी गृहस्थी को सम्मान दिए जाते हैं, अदब दिए जाते हैं, शोरगुल मचाए चले जाते हैं कि बड़ा पवित्र परिवार है, बड़ा पवित्र समाज है, बड़ा पवित्र जीवन है। और यही परिवार, यही समाज और यही सयता जिसके गुणगान करते हम थकते नहीं हैं मनुष्य को प्रेम से रोकने का कारण बन रही है। इस बात को थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा।
मनुष्यता के विकास में कहीं कोई बुनियादी भूल हो गई है। यह सवाल नहीं
है कि एकाध आदमी ईश्वर को पा ले, कोई कृष्ण, कोई राम, कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट ईश्वर को उपलब्ध हो जाए, यह कोई सवाल नहीं है। अरबों खरबों लोगों में अगर एक आदमी में ज्योति उतर भी आती हो तो यह कोई विचार करने की बात

नहीं है। इसमें तो कोई हिसाब रखने की जरूरत भी नहीं है। एक माली एक बगीचा लगाता है। उसने दस करोड़ पौधे उसे बगीचे में लगाए हैं और एक पौधे में एक अच्छा सा फूल आ जाए तो माली की प्रशंसा करने कौन आएगा? कौन कहेगा कि माली तू बहुत कुशल है कि तूने जो बगीचा लगाया है, वह बहुत अदभुत है? देख, दस करोड़ वृक्षों में एक फूल खिल गया है! नहीं, हम कहेंगे यह माली की कुशलता का सबूत नहीं है। माली की भूल चूक से कोई खिल गया होगा, अन्यथा बाकी सारे पेड़ खबर दे रहे हैं कि माली कितना कुशल है! यह माली के बावजूद खिल गया होगा। माली ने कोशिश की होगी कि न खिल पाए क्योंकि सारे पौधे तो खबर दे रहे हैं कि माली के फूल कैसे खिले हुए हैं।
खरबों लोगों के बीच कोई एकाध आदमी के जीवन में ज्योति जल जाती है और
हम उसी का शोरगुल मचाते रहते हैं हजारों सालों तक! पूजा करते रहते हैं, उसी के मंदिर बनाते रहते हज, उसी का गुणगान करते रहते हैं। अब तक हम रामलीला कर रहे हैं, अब तक हम बुद्ध की जयंती मना रहे हैं। अब तक महावीर की पूजा कर रहे हज, अब तक क्राइस्ट के सामने घुटने टेके बैठे हुए हैं। यह किस बात का सबूत है? यह बात का सबूत है कि पांच हजार साल में पांच छह आदमियों के अतिरिक्त आदमियत के जीवन में परमात्मा का कोई संपर्क नहीं हो सकता। नहीं तो कभी का हम भूल गए होते राम को, कभी के भूल गए होते बुद्ध को, कभी का हम भूल गए होते महावीर को महावीर को हुए ढाई हजार साल हो गए। ढाई हजार साल में कोई आदमी हनीं हुआ कि महावीर को हम भूल सकते। महावीर को अभी तक याद रखना पड़ा है। वह एक फूल खिला था, वह अब तक हमें याद रखना पड़ता है।
यह कोई गौरव की बात नहीं है कि हमें अब तक स्मृति है बुद्ध की, महावीर की, राम की, मोहम्मद की, क्राइस्ट की या जरथुष्ट की। यह इस बात का सबूत है कि और आदमी होते ही नहीं कि उनको हम भूला सकें। बस दो चार इने गिने नाम अटके रह गए हैं मनुष्य जाति की स्मृति में। और उन नामों के साथ भी हमने क्या किया है सिवाय उपद्रव के, हिंसा के। और उनकी पूजा करने वाले लोगों ने क्या किया है सिवाय आदमी के जीवन को नर्क बनाने के। मंदिरों और मस्जिदों के पुजारियों और पूजा को ने जमीन पर जितनी हत्याएं की हैं, और जितना खून बहाया है और जीवन का जितना अहित किया है उतना किसी ने भी नहीं किया है। जरूर कहीं कोई बुनियादी भूल हो गई; नहीं तो इतने पौधे लगें और फूल न आए, यह बड़े आश्चर्य की बात है। कहीं जरूर भूल हो गई।
मेरी दृष्टि में प्रेम अब तक मनुष्य के जीवन का केंद्र नहीं बनाया जा सका, इसीलिए भूल हो गई है। और प्रेम केंद्र बनेगा भी नहीं क्योंकि जिन चीजों के कारण प्रेम जीवन का केंद्र नहीं बन रहा है, हम उन्हीं चीजों का शोर गुल मचा रहे हैं, आदर कर रहे हैं, सम्मान कर रहे हैं और उन्हीं चीजों को बढ़ावा दे रहे हैं। मनुष्य की जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा ही गलत हो गयी है। इस पर पुनर्विचार करना जरूरी है, अन्यथा सिर्फ हम कामनाएं कर सकते हैं और कुछ भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। क्या आपको कभी यह बात ख्याल में आयी है कि आपका परिवार प्रेम का शत्रु है? क्या आपको यह बात कभी ख्याल में आयी है कि मनु से लेकर आज तक के सभी नीतिकार प्रेम के विरोधी हैं? जीवन का केंद्र है परिवार और परिवार विवाह पर खड़ा किया गया है जब कि परिवार प्रेम पर खड़ा होना चाहिए था। भूल हो गयी है, आदमी के सारे पारिवारिक विकास की भूल हो गयी है। परिवार निर्मित होना चाहिए प्रेम के केंद्र पर और परिवार निर्मित किया जा सकता है विवाह के केंद्र पर। इससे ज्यादा झूठी और गलत बात नहीं हो सकती। है।
प्रेम और विवाह का क्या संबंध है? प्रेम से तो विवाह निकल सकता है। लेकिन विवाह से प्रेम नहीं निकलता और न ही निकल सकता है। इस बात को थोड़ा समझ लें तो हम आगे बढ़ सकें। प्रेम परमात्मा की व्यवस्था है और विवाह आदमी की व्यवस्था है। विवाह सामाजिक संस्था है, प्रेम प्रकृति का दान है? विवाह, समाज, कानून नियमित करता है, बनाता है। विवाह आदमी की ईजाद है, और प्रेम? प्रेम परमात्मा का दान है। हमने सारे परिवार को विवाह के केंद्र पर खड़ाकर दिया है, प्रेम के केंद्र पर नहीं। हमने यह मान रखा है कि विवाह कर देने से दो व्यक्ति प्रेम की दुनिया में उतर जाएंगे। अदभुत झूठी बात है यह, और पांच हजार वर्षों में भी हमको इसका ख्याल नहीं आ सका है। हम अदभुत

अंधे हैं। दो आदमियों के हाथ बांध देने से प्रेम के पैदा हो जाने की कोई जरूरत नहीं है, कोई अनिवार्यता नहीं है। बल्कि सच्चाई यह है कि जो लोग बंधा हुआ अनुभव करते हैं, वे आपस में प्रेम कभी भी नहीं कर सकते।
प्रेम का जन्म होता है स्वतंत्रता में। प्रेम का जन्म होता है स्वतंत्रता की भूमि में जहां कोई बंधन नहीं, जहां कोई जबरदस्ती हनीं, जहां कोई कानून नहीं। प्रेम तो व्यक्ति का अपना आत्मदान है, बंधन नहीं, जबरदस्ती नहीं। उसके पीछे कोई विवशता, कोई मजबूरी नहीं है। किंतु हम अविवाहित स्त्री या पुरुष के मन में, युवक और युवती के मन में उस प्रेम की पहली किरण का गला घोंटकर हत्या कर देते हैं, फिर हम कहते हैं कि विवाह से प्रेम पैदा होना चाहिए, और फिर जो प्रेम पैदा होता है, वह बिल्कुल पैदा किया, (बनसजपअंजमक) होता है, कोशिश से लाया गया होता है। वह प्रेम वास्तविक नहीं होता, वह प्रेम सहजस्फूर्त (एचवदजंदमवने) नहीं होता है। वह प्रेम प्राणों से सहज उठता नहीं है, फैलता नहीं है। और जिसे हम विवाह से उत्पन्न प्रेम कहते हैं वह प्रेम केवल सहवास के कारण पैदा हुआ मोह होता है। प्राणों की झलक और प्राणों का आकर्षण और प्राणों की विद्युत वहां अनुपस्थित होती है। और इस तरह से परिवार बनता है, और इस विवाह से पैदा हुआ परिवार और परिवार की पवित्रता की कथाओं का कोई हिसाब नहीं है। और परिवार की प्रशंसाओं, स्तुतियों की कोई गुनना नहीं है। और यही परिवार सबसे कुरूप संस्था साबित हुई है।
पूरी मनुष्य जाति को विकृत (ढमतअमतज) करने में, अधार्मिक करने में, हिंसक बनाने में प्रेम से शून्य परिवार सबसे बड़ी संस्था साबित हुई है। प्रेम से शून्य परिवार से ज्यादा असुंदर और कुरूप (न्नहसल) कुछ भी नहीं है, वही अधर्म का अड्डा बना हुआ है। जब हम एक युवक और युवती को विवाह में बांधते हज, बिना प्रेम के, बिना आंतरिक परिचय के, बिना एक दूसरे के प्राणों के संगीत के, तब हम केवल पंडित के मंत्रों में और वेदी की पूजा में और थोथे उपक्रम में उनको विवाह से बांध देते हैं। फिर आशा करते हैं उनको साथ छोड़ ने के कि उनके जीवन में प्रेम पैदा हो जाएगा! प्रेम तो पैदा नहीं होता है, सिर्फ उनके संबंध कामुम (एमगनंस) होते हैं। क्योंकि प्रेम पैदा नहीं किया जा सकता है। हां, प्रेम पैदा हो जाए तो व्यक्ति साथ जुड़कर परिवार निर्माण जरूर कर सकता है। दो व्यक्तियों को परिवार के निर्माण के लिए जोड़ दिया जाए और फिर आशा की जाए कि प्रेम पैदा हो जाए, यह नहीं हो सकता है। और जब प्रेम पैदा नहीं होता है तो क्या परिणाम होते हैं आपको पता है?
एक परिवार में कलह है। जिसके हम गृहस्थी कहते हैं, वह संघर्ष, कलह, द्वेष ईर्ष्या और चौबीस घंटे उपद्रव का अड्डा बना हुआ है। लेकिन न मालूम हम कैसे अंधे हैं कि इसे देखते भी नहीं हैं। बाहर जब हम निकलते हैं मुस्कराते हुए निकलते हैं। सब घर के आंसू पोंछकर बाहर जाते हैं, पत्नी भी हंसती हुई मालूम पड़ती है, पति भी हंसता हुआ मालूम पड़ता है। लेकिन ये चेहरे झूठे हैं। दूसरों को दिखाई पड़ने वाले चेहरे हैं। घर भीतर के चेहरे बहुत आंसुओं से भरे हुए हैं। चौबीस घंटे कलह और संघर्ष में जीवन बीत रहा है। फिर इस कलह और संघर्ष के स्वाभाविक परिणाम भी होंगे ही।
प्रेम के बिना किसी व्यक्ति के जीवन में आत्मतृप्ति उपलब्ध नहीं होती। प्रेम जो है, वह व्यक्तित्व की तृप्ति का चरम बिंदु है। और जब प्रेम नहीं मिलता है तो व्यक्तित्व हमेशा अतृप्त, हमेशा अधूरा, बेचैन, तड़पता हुआ, मांग करता है कि मुझे पूर्ति चाहिए। हमेशा बेचैन, तड़पता हुआ रह जाता है। यह तड़पता हुआ व्यक्तित्व समाज में अनाचार पैदा करता है क्योंकि तड़पता हुआ व्यक्तित्व प्रेम को खोजने निकलता है। विवाह से प्रेम नहीं मिलता तो वह विवाह के अतिरिक्त प्रेम को खोजने की कोशिश करता है। वेश्याएं पैदा होती हैं विवाह के कारण। विवाह है मूल, विवाह है जड़, वेश्याओं के पैदा करने की। और अब तक तो स्त्री वेश्याएं थीं और अब तो सय मुल्कों में पुरुष वेश्याएं (ऊंसम चतवेजपजनजम) भी उपलब्ध हैं।
वेश्याएं पैदा होंगी क्योंकि परिवार में जो प्रेम उपलब्ध होना चाहिए
था वह उपलब्ध हो रहा है। आदमी दूसरे घरों में झांक रहा है उस प्रेम के लिए। वेश्याएं होंगी, और अगर वेश्याएं रोक दी जाएगी तो दूसरे परिवार में पीछे

के द्वारों से प्रेम के रास्ते निर्मित होंगे। इसीलिए तो सारे समाज ने यह तय कर लिया है कि कुछ वेश्याएं निश्चित कर दो ताकि परिवारों का आचरण सुरक्षित रहे। कुछ स्त्रियों को पीड़ा में डाल दो ताकि बाकी स्त्रियां पतिव्रता बनी रहें और सती सावित्री बनी रहे। लेकिन जो संस्थाएं ईजाद करी पड़ती हैं, जान लेना चाहिए कि वह पूरा समाज बुनियादी रूप से अनैतिक होगा। अन्यथा ऐसी अनैतिक ईजाद की आवश्यकता नहीं थी। वेश्या पैदा होती हैं, अनाचार पैदा होता है, व्यभिचार पैदा होता है।, तलाक पैदा होते हैं। यदि तलाक न होता, न व्यभिचार होता, और न अनाचार होता तो घर एक चौबीस घंटे का मानसिक तनाव (ःदगपमजल) बन जाता।
सारी दुनिया में पागलों की संख्या बढ़ती गई है। ये पागल परिवार के भीतर पैदा होते हैं। सारी दुनिया में स्त्रियां हिस्टीरिया (भलेजमतपं) और न्यूरोसिस (छमनतवेपे) से पीड़ित हो रही हैं। विक्षिप्त, उन्माद से भरती चली जा रही है। बेहोश होती हैं, गिरती हैं, चिलाती हैं। पुरुष पागल होते चले जा रहे हैं। एक घंटे में जमीन पर एक हजार आत्महत्याएं हो जाती हैं और हम चिल्लाए जा रहे हैं¬समाज हमारा बहुत महान है, ऋषि मुनियों ने निर्मित किया है! और हम चिल्लाए जा रहे हैं कि बहुत सोच समझकर समाज के आधार रखे गए हैं! कैसे ऋषि मुनि और कैसे ये आधार? अभी एक घंटा मैं बोलूंगा तो इस बीच एक हजार आदमी कहीं छुरा मार लेंगे कहीं टेन के नीचे लेट जाएंगे, कोई लहर पी लेगा। उन एक हजार लोगों की जिंदगी कैसी होगी, जो हर घंटे मरने को तैयार हो जाते हैं? और यह मत सोचना कि वे जो नहीं मरते हैं बहुत सुखमय हैं। कुल जमा कारण यह है कि वे मरने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। सुख का कोई भी सवाल नहीं है, असल मग मरने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं तो जिए चले जाते हैं, धक्के खाए चले जाते हैं। सोचते हैं आज गलत है, तो कल ठीक हो जाएगा। परसों सब ठीक हो जाएगा। लेकिन मस्तिष्क उनके रुग्ण होते चले जाते हैं।
प्रेम के अतिरिक्त को आदमी कभी स्वस्थ नहीं हो सकता है। प्रेम जीवन में न हो तो मस्तिष्क रुग्ण होगा, चिंता से भरेगा, तनाव से भरेगा। आदमी शराब पीएगा, नशा करेगा, कहीं जाकर अपने को भूल जाना चाहेगा। दुनिया में पढ़ती हुई शराब शराबियों के कारण नहीं है। परिवार ने उस हालत में ला दिया है लोगों को कि बिना बेहोश हुए थोड़ी देर के लिए भी रास्ता मिलना मुश्किल हो गया है। तो लोग शराब पीते चले जाएंगे, लोग बेहोश पड़े रहेंगे, लोग हत्या करेंगे, लोग पागल होते जाएंगे। अमरीका में प्रतिदिन बीस लाख आदमी अपना मानसिक इलाज करवा रहे हैं, और ये सरकारी आंकड़े हैं, और आप तो भली भांति जानते हैं कि सरकारी आंकड़े कितने सही होते हैं! बीस लाख सरकार कहती है तो कितने लोग इलाज करा रहे होंगे, यह कहना मुश्किल है। और जो अमरीका की हालत है, वह सारी दुनिया की हालत है।
आधुनिक युग के मनस्तत्वविद यह कहते हैं कि करीब करीब चार आदमियों में
से तीन आदमी एबनार्मल हो गए हैं, रुग्ण हो गए हैं, स्वस्थ नहीं हैं। जिस समाज में चार आदमियों में तीन आदमी मानसिक रूप से रुग्ण हो जाते हों उस मसाज के आधारों को उसकी बुनियादों को फिर से सोच लेना जरूरी है, नहीं तो कल चार आदमी भी रुग्ण हो जाएंगे और फिर सोचने वाले भी शेष नहीं रह जाएंगे। फिर बहुत मुश्किल हो जाएगी। लेकिन होता ऐसा है कि जब एक ही बीमारी से सारे लोग ग्रसित हो जाते हैं तो उस बीमारी का पता नहीं चलता। हम सब एक से रुग्ण, बीमार और परेशान हैं, तो हमें पता बिल्कुल नहीं चलता है। सभी ऐसे हैं इसीलिए स्वस्थ मालूम पड़ते हैं। जब जब सभी ऐसे हैं तो ठीक है। ऐसे दुनिया चलती है, यही जीवन है। जब ऐसी पीड़ा दिखायी देती है तो हम ऋषि मुनियों के वचन दोहराते हैं कि वह तो ऋषि मुनियों ने पहले ही कह दिया कि जीवन दुख है। जीवन दुख नहीं है, यह दुख हम बनाए हुए हैं। वह तो पहले ही ऋषि मुनियों
ने कह दिया है कि जीवन तो असार है, इससे छुटकारा पाना चाहिए! जीवन असार नहीं है, यह असार हमने बनाया हुआ है और जीवन से छुटकारा पाने की बातें दो कौड़ी ही हैं। क्योंकि जो आदमी जीवन से छुटकारा पाने की कोशिश करता है वह प्रभु को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि जीवन प्रभु है, जीवन परमात्मा है, जीवन में परमात्मा ही तो प्रकट हो रहा है। उससे जो दूर भागेगा वह परमात्मा से ही दूर चला जाएगा।

जब एक सी बीमारी पकड़ती है तो किसी को पता नहीं चलता है। पूरी आदमियत
जड़ से रुग्ण है इसलिए पता नहीं चलता तो दूसरी तरकीबें खोजते हैं इलाज की। मूल कारण (ींनेंसपजल) जो है, बुनियादी कारण जो है उसको सोचते नहीं, ऊपर इलाज सोचते हैं। ऊपरी इलाज भी क्या सोचते हैं? एक आदमी शराब पीने लगता है जीवन से घबरा कर। एक आदमी जाकर नृत्य देखने लगता है, वह वेश्या के घर बैठ जाता है जीवन से घबराकर। दूसरा सिनेमा में बैठ जाता है। तीसरा आदमी चुनाव लड़ने लगता है ताकि भूल जाए सबको। चौथा आदमी मंदिरों में जाकर भजन कीर्तन करने लगता है। यह भजन कीर्तन करने वाला भी खुद के जीवन को भूलने की कोशिश कर रहा है। यह कोई परमात्मा को पाने का रास्ता नहीं है। परमात्मा तो जीवन में प्रवेश से उपलब्ध होता है, जीवन से भागने से नहीं। यह सब पलायन (द्मेबंचम) हैं। एक आदमी मंदिर में भजन कीर्तन कर रहा है, हिल डुल रहा है, हम कहते हैं कि भक्त जी बहुत आनंदित हो रहे हैं। भक्त जी आनंदित नहीं हो रहे हैं भक्त जी किसी दुख से भागे हुए हैं, वहां भुलाने की कोशिश कर रहे हैं। शराब का ही यह दूसरा रूप है। यह आध्यात्मिक नशा (ेचपतपजनंस पदजवगपबंजपवद) है। यह अध्यात्म के नाम से नयी शराबें हैं जो सारी दुनिया में चलती हैं।
इन लोगों ने जीवन से भाग कर जिंदगी को बदलने नहीं दिया आज तक। जिंदगी वहीं की वहीं, दुख से भरी हुई है। और जब भी कोई दुखी हो जाता है वह भी इनके पीछे चला जाता है कि हमको भी गुरुमंत्र दे दें, हमारा भी कान फूंक दें, कि हम भी इसी तरह सुखी हो जाए, जैसे आप हो गए हैं। लेकिन यह जिंदगी क्यों दुख पैदा कर रही है इसको देखने के लिए, इसके विज्ञान के खोजने के लिए कोई भी नहीं जाता है।
मेरी दृष्टि में जहां जीवन की शुरुआत होती है वहीं कुछ गड़बड़ हो गयी है। और वह गड़बड़ यह हो गयी है कि हमने मनुष्य जाति पर प्रेम की जगह विवाह को थोप दिया है। फिर विवाह होगा और ये सारे रूप पैदा होंगे। जब दो व्यक्ति एक दूसरे से बंध जाते हैं और उनके जीवन में कोई शांति और तृप्ति नहीं मिलती तो वे दोनों एक दूसरे पर क्रुद्ध हो जाते हैं। वे कहते हैं, तेरे कारण मुझे शांति नहीं मिल पा रही है। और वे एक दूसरे को सताना शुरू करते हैं, परेशान करना शुरू करते हैं और इसी हैरानी, इसी परेशानी, इसी कलह के बीच बच्चों का जन्म होता है। ये बच्चे पैदाइश से ही विकृत (ढमतअमतजमक) हो जाते हैं। मेरी समझ में, मेरी दृष्टि में जिस दिन आदमी पूरी तरह आदमी के जन्म विज्ञान को विकसित करेगा तो शायद आपको पता लगे कि दुनिया में बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट जैसे लोग शायद इसीलिए पैदा हो सके हैं कि उनके मां बाप ने जिस क्षण में संभोग किया था, उस समय वे अपूर्व प्रेम से संयुक्त हुए थे। प्रेम के क्षण में गर्भस्थापन (ींवदबमचजपवद) हुआ था। दुनिया में जो थोड़े से अदभुत लोग हुए¬शांति, आनंदित, प्रभु को उपलब्ध, वे वही लोग हैं जिनका पहला अणु प्रेम की दीक्षा से उत्पन्न हुआ था, जिनको पहला जीवन अणु प्रेम में सराबोर पैदा हुआ था।
पति और पत्नी कलह से भरे हुए हैं, क्रोध से, ईर्ष्या से, एक दूसरे के प्रति संघर्ष से अहंकार से एक दूसरे की छाती पर चढ़े हुए हैं, एक दूसरे के मालिक बनना चाहे रहे हैं। इसी बीच उनके बच्चे पैदा हो रहे हैं। ये बच्चे किसी आध्यात्मिक जीवन में कैसे प्रवेश पाएंगे?
मैंने सुना है, एक घर में एक मां ने अपने बेटे और छोटी बेटी को¬वे दोनों बेटे और बेटी बाहर मैदान में लड़ रहे थे, एक दूसरे पर घूंसेबाजी कर रहे थे¬कहा कि अरे यह क्या करते हो। कितनी बार मैंने समझाया कि आपस में लड़ा मत करो, खेला करो। तो उसे लड़के ने कहा: हम लड़ नहीं रहे हैं, खेल रहे हैं, मम्मी डैडी का खेल कर रहे हैं। जो घर में रोज हो रहा है वह हम दोहरा रहे हैं।
यह खेल जन्म के क्षण से शुरू हो जाता है। इस संबंध में दो चार बातें समझ लेनी बहुत जरूरी हैं।
पहली बातें मेरी दृष्टि में, जब एक स्त्री और पुरुष परिपूर्ण प्रेम
के आधार पर मिलते हैं, उनका संभोग होता है, उनका मिलन होता है तो उस परिपूर्ण प्रेम के तल पर उनके शरीर ही नहीं मिलते हैं, उनके मनस भी मिलता

है, उनकी आत्मा भी मिलती है। वे एक लयपूर्ण संगीत में डूब जाते हैं। वे दोनों विलीन हो जाते हैं और शायद, शायद परमात्मा ही शेष रह जाता है उस क्षण में। और उस क्षण जिस बच्चे का गर्भाधान होता है वह बच्चा परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है, क्योंकि प्रेम के क्षण को पहला कदम उसके जीवन में उठा लिया है। लेकिन जो मां बाप, पति पत्नी आपस में द्वेष से भरे हैं, घृणा से भरे हैं, क्रोध से भरे हैं, कलह से भरे हैं वे भी मिलती हैं, लेकिन उनके शरीर ही मिलते हैं, उनकी आत्मा और प्राण नहीं मिलते और उनके शरीर के ऊपरी मिलन से जो बच्चे पैदा होते हैं वे अगर शरीरवादी (उंजमतपंसपेज) पैदा होते हों, बीमार और रुग्ण पैदा होते हों, और उनके जीवन में अगर कोई आत्मा की प्यास पैदा न होती हो, तो दोष उन बच्चों को मत देना। बहुत दिया जा चुका है यह दोष। दोष देना उन मां बाप को जिनकी छवि लेकर वह जन्मते हैं जिनका सब अपराध और जिनकी सब बीमारियां लेकर वे जन्मते हैं और जिनका सब क्रोध और घृणा लेकर वे जन्मते हैं। जन्म साथ ही उनका पौधा विकृत हो जाता है। फिर इनको पिलाओ गीता, इनको समझा ओ कुरान, इनसे कहो कि प्रार्थनाएं करो¬सब झूठी हो जाती हैं, क्योंकि प्रेम का बीज ही शुरू नहीं हो सका तो प्रार्थनाएं कैसे शुरू हो सकती हैं?
जब एक स्त्री और पुरुष परिपूर्ण प्रेम और आनंद में मिलते हैं तो वह मिलन एक आध्यात्मिक कृत्य () हो जाता है। फिर उसका काम (ेमग) से कोई संबंध नहीं है। वह मिलन फिर कामुक नहीं है, वह मिलन शारीरिक नहीं है, वह मिलन इतना अनूठा है, इतना महत्वपूर्ण, जितना किसी योगी की समाधि। उतना ही महत्वपूर्ण है वह मिलन जब दो आत्माएं परिपूर्ण प्रेम से संयुक्त होती हैं, और उतना ही पवित्र है वह कृत्य, क्योंकि परमात्मा उसी कृत्य से जीवन को जन्म देता है, और जीवन को गति देता है। लेकिन तथाकथित धार्मिक लोगों ने, तथाकथित झूठे समाज ने, तथाकथित झूठे परिवार ने यही समझाने की कोशिश की है कि सेक्स, काम, यौन अपवित्र है, घृणित है। यह पागलपन की बातें हैं। अगर यौन घृणित और अपवित्र है तो सारा जीवन अपवित्र हो गया और घृणित हो गया। अगर सेक्स पाप है तो पूरा जीवन पाप हो गया, पूरा जीवन निदिंत (बवदकमउदमक) हो गया। और अगर जीवन ही परा निदिंत हो जाएगा तो कैसे प्रसन्न लोग उत्पन्न होंगे, कैसे सच्चे लोग अउपलब्ध होंगे? जब जीवन ही पूरा का पूरा पाप है तो सारी रात अंधेरी हो गई। अब इसमें प्रकाश की किरण कहीं से लानी पड़ेगी।

मैं आपको कहना चाहता हूं, एक नई मनुष्यता के जन्म के लिए सेक्स की पवित्रता, सेक्स की धार्मिकता स्वीकार करनी अत्यंत आवश्यक है क्योंकि जीवन उससे ही जन्मता है। परमात्मा उसी कृत्य से जीवन को जन्माता है। और परमात्मा ने जिसको जीवन की शुरुआत बनाया है वह कदापि पाप नहीं हो सकता है। लेकिन आदमी ने जरूर उसे पाप कर दिया है क्योंकि जो चीज प्रेम से रहित है वह पाप हो ही जाती है। जो चीज प्रेम से शून्य हो जाती है वह अपवित्र हो जाती है। आदमी की जिंदगी में प्रेम नहीं रहा इसलिए केवल कामुकता (एमगनंसपजल) रह गई है, सिर्फ यौन रह गया है। वह यौन पाप हो गया है। वह यौन का पाप नहीं है वह हमारे प्रेम के अभाव का पाप है और उसी पाप से सारा जीवन शुरू होता है। फिर ये बच्चे पैदा होते हैं, फिर ये बच्चे जन्मते हैं।
और स्मरण रहे, जो पत्नी अपने पति को प्रेम करती है उसके लिए पति परमात्मा हो जाता है। शास्त्रों के समझाने से नहीं होती यह बात। जो पति अपनी पत्नी से प्रेम करता है उसके लिए पत्नी भी परमात्मा हो जाती है, क्योंकि प्रेम किसी को भी परमात्मा बना देता है। जिनकी तरफ उसकी आंखें प्रेम से उठती हैं वही परमात्मा हो जाता है। परमात्मा का कोई और अर्थ नहीं है। प्रेम की आंख सारे जगत को धीरे धीरे परमात्मामय देखने लगती है। लेकिन जो एक को ही प्रेम से भरकर नहीं देख पाता और सारे जगत को ब्रह्ममय देखने की बातें करता है उसकी वे बातें झूठी हैं, उन बातों का कोई आधार और अर्थ नहीं है।
जिसने कभी एक को भी प्रेम नहीं किया उसके जीवन में परमात्मा की कोई शुरुआत नहीं हो सकती, क्योंकि प्रेम के ही क्षण में पहली दफा कोई व्यक्ति परमात्मा हो जाता है। वह पली झलक है प्रभु की। फिर उसी झलक को आदमी बढ़ाता

है और एक दिन वही झलक पूरी हो जाती है। सारा जगत उसी रूप में रूपांतरित हो जाता है। लेकिन जिसने पानी की कभी बूंद नहीं देखी और कहता है मुझे सागर चाहिए, कहता है पानी की बूंद से मुझे कोई मतलब नहीं, पानी की बूंद का मैं क्या करूंगा मुझे तो सागर चाहिए तो उससे हम कहेंगे, तूने पानी की बूंद भी नहीं देखी, पानी की बूंद भी नहीं पा सका और सागर पाने चल पड़ा है, तू पागल है। क्योंकि सागर और क्या है पानी की अनंत बूंदों के जोड़ के सिवाय? परमात्मा भी प्रेम की अनंत बूंदों का जोड़ है। प्रेम की अगर एक बूंद निदिंत है तो पूरा परमात्मा निदिंत हो गया। फिर झूठे परमात्मा खड़े होंगे, मूर्तियां खड़ी होंगी, पूजा पाठ हों, सब बकवास होगी लेकिन हमारे प्राणों का कोई अंत संबंध उससे नहीं हो सकता है।
और यह भी ध्यान में रख लेना जरूरी है कि कोई स्त्री अपने पति को प्रेम करती है, अपने प्रेमी को प्रेम करती है तभी प्रेम के कारण, पूर्ण प्रेम के कारण ही वह ठीक अर्थों में मां बन पाती है। बच्चे पैदा कर लेने मात्र से कोई मां नहीं बन जाती। मां तो कोई स्त्री तभी बनती है और पिता तो कोई पुरुष तभी बनता है जब कि उन्होंने एक दूसरे को प्रेम किया हो। जब पत्नी अपने पति को प्रेम करती है, अपने प्रेम को प्रेम करती है तो बच्चे उसे अपने पति का पुनर्जन्म मालूम पड़ते हैं। वह फिर वही शक्ल है, फिर वही रूप हैं, फिर वही निर्दोष आंखें हैं जो उसके पति में छिपी थीं, वह फिर प्रकट हुई हैं। उसने अगर अपने पति को प्रेम किया है तो वह अपने बच्चे को प्रेम कर सकेगी। बच्चे को किया गया प्रेम प्रति को किए गए प्रेम की प्रतिध्वनि है। नहीं तो कोई बच्चे को प्रेम नहीं कर सकता है। मां बच्चे को प्रेम नहीं कर सकती, जब तक उसने अपने पति को न चाहा हो पूरे पूरे प्राणों से। क्योंकि वह बच्चे उसके प्रति की प्रतिकृतियां हैं, वह उसकी ही प्रतिध्वनियां हैं, यह पति ही फिर वापस लौट आया है। यह नया जन्म है उसके पति का। पति फिर पवित्र और नया होकर वापस लौट आया है। लेकिन पति के प्रति अगर प्रेम नहीं है तो बच्चे के प्रति प्रेम कैसे होगा? बच्चे उपेक्षित हो जाएंगे, हो गए हैं।
बाप भी तभी कोई बनता है जब अपनी पत्नी को इतना प्रेम करता है कि पत्नी
भी उसे परमात्मा दिखायी देती है, तब बच्चा फिर उसकी पत्नी का ही लौटता हुआ रूप है। पत्नी को जब उसने पहली दहा देखा था तब वह जैसी निर्दोष थी, जब जैसी शांत थी, जब जैसी सुंदर था, तब उसकी आंखें जैसी झील की तरह थीं, इन बच्चों में फिर वहीं आंखें वापस लौट आई हैं। इन बच्चों में फिर वही चेहरा वापस लौट आया है। ये बच्चे फिर उसी छबि में नया होकर आ गए हैं। जैसे पिछले बसंत में फूल खिले थे, पिछले बसंत में पत्ते आए थे। फिर साल बीत गया पुराने पत्ते गिरे गए। फिर नयी कोंपलें निकल आयी हैं, फिर नए पत्तों से वृक्ष भर गया है। फिर लौट और आया बसंत, फिर नया हो गया है। लेकिन जिसने पिछले बसंत को ही प्रेम नहीं किया था वह इस बसंत को कैसे प्रेम कर सकेगा?
जीवन निरंतर लौट रहा है। निरंतर जीवन का पुनर्जन्म चल रहा है। रोज नया होता चला जाता है, पुराने पत्ते गिर जाते हैं, नए आ जाते हैं। जीवन की सृजनात्मक (बतमंजपअपजल) ही तो परमात्मा है, यही तो प्रभु है। जो इसको पहचानेगा वही तो उसे पहचानेगा। लेकिन न मां बच्चे को प्रेम कर पाती है, न पिता बच्चे को प्रेम कर पाता है। और जब मां और बाप बच्चे को प्रेम नहीं कर पाते हैं तो बच्चे जन्म से ही पागल होने के रास्ते पर संलग्न हो जाते हैं। उनको दूध मिलता है, कपड़े मिलते हैं, मकान मिलते हैं लेकिन प्रेम नहीं मिलता है। प्रेम कि बिना उनको परमात्मा नहीं मिल सकता है और सब मिल सकता है।
अभी रूस का एक वैज्ञानिक बंदरों के ऊपर कुछ प्रयोग करता था। उसने कुछ नकली बंदरिया बनायीं। नकली बिजली के यांत्रिक हाथ पैर उनके, बिजली के तारों का ढांचा। जो बंदर पैदा हुए उनको नकली माताओं के पास कर दिया गया। नकली माताओं से वे चिपक गए। वे पहले दिन के बच्चे, उनको कुछ पता नहीं कि कौन असली है, कौन नकली। वे नकली मां के पास ले जाए गए। पैदा होते ही उसकी छाती से जाकर चिपके रहते हैं। वह मशीनी बंदरिया है, वह हिलती रहती है, बच्चे समझते हैं कि मां उनको हिला डुला कर झुला रही है। ऐसे बीस बंदर के बच्चों को नकली मां के पास पाला गया और उनको अच्छा दूध दिया गया। मां ने

उनको अच्छी तरह हिलाया डुलाया, मां कूदती फांदती सब करती। बच्चे स्वस्थ दिखाई पड़ते थे। फिर वे बड़े भी हो गए। लेकिन वे सब बंदर पागल निकले, वे सब असामान्य (ःइदवतउं) साबित हुए। उनको दूध मिला, उनका शरीर अच्छा हो गया लेकिन उनका व्यवहार विक्षिप्त हो गया। वैज्ञानिक बड़े हैरान हुए कि इनको क्या हुआ? इनको सब तो मिला, फिर ये विक्षिप्त कैसे हो गए?
एक चीज, जो वैज्ञानिक की लेबोरेटरी में नहीं पकड़ी जा सकी थी वह उनको नहीं मिली। प्रेम उनको नहीं मिला। जो उन बीस बंदरों की हालत हुई वही साढ़े तीन अरब मनुष्यों की हो रही है। झूठी मां मिलती है, झूठा बाप मिलता है। नकली मां हिलती रहती है, नकली बात हिलता रहता है और ये बच्चे विक्षिप्त हो जाते हैं। और हम कहते हैं कि ये शांत नहीं होते, अशांत होते चले जाते हैं। ये छुरेबाजी करते हैं, ये लड़कियों पर एसिड फेंकते हैं, ये कालेज में आग लगाते हैं, ये बस पर पत्थर फेंकते हैं, ये मास्टर को मारते है। मारेंगे। मारे बिना इनको रास्ता नहीं। अभी थोड़ा थोड़ा मारते हैं, कल और ज्यादा मारेंगे। और तुम्हारे कोई शिक्षक, तुम्हारे कोई नेता, तुम्हारे कोई धर्मगुरु इनको नहीं समझा सकेंगे। क्योंकि सवाल समझाने का नहीं है आत्मा ही रुग्ण पैदा हो रही है। यह रुग्ण आत्मा प्यास पैदा करेगी, यह चीजों को तोड़ेगी, मिटेगी।
तीन हजार साल से जो बात चलती थी वह अब चरम परिणति (बसपउंग) पर पहुंच रही है। सौ डिग्री तक हम पानी को गरम करते हैं, पानी भाप बनकर उड़ जाता है, निन्यानबे डिग्री तक पानी बना रहता है फिर सौ डिग्री पर भाप बनने लगता है। सौ डिग्री पर पहुंच गया है आदमियत का पागलपन। अब वह भाप बनकर उड़ना शुरू हो रहा है। मत चिल्लाइए, मत परेशान होइए! बनने दीजिए भाप और उपदेश देते रहिए, और आपके साधु संत समझाया करें अच्छी अच्छी बातें, और गीता की टीकाएं करते रहें। करते रहो प्रवचन, और टीका गीता पर, और दोहराते रहो पुराने शब्दों को। यह भाप बननी बंद नहीं होगी। यह भाप बनती तब बंद होगी जब जीवन की पूरी प्रक्रिया को हम समझेंगे। समझेंगे कि कहीं कोई भूल हो रही है, कहीं कोई भूल गई है। और वह कोई आज की भूल हनीं है। चार पांच हजार साल की भूल है। शिखर (बसपउंग) पर पहुंच गई है इसलिए मुश्किल खड़ी हुई जा रही है।
ये प्रेम से रिक्त बच्चे जन्मते हैं और फिर प्रेम से रिक्त हवा में ही पाले जाते हैं। फिर वही नाटक ये दोहराएगा और फिर मम्मी और डैडी का पुराना खेल! वे बड़े हो जाएंगे, और फिर वही पुराना नाटक दोहराएंगे¬विवाह में बांधे जाएंगे, क्योंकि समाज प्रेम को आज्ञा नहीं देता। न मां पसंद करती है कि मेरी लड़की किसी को प्रेम करे। न बाप पसंद करते हैं कि मेरा बेटा किसी को प्रेम करे। न समाज पसंद करता है कोई किसी को प्रेम करे। प्रेम तो होना ही नहीं चाहिए। प्रेम तो पाप है। वह तो बिल्कुल ही योग्य बात नहीं है। विवाह होना चाहिए। फिर प्रेम नहीं होगा। फिर विवाह होगा। और पहिया वैसा का वैसा ही घूमता रहेगा।
आप कहेंगे कि जहां प्रेम होता है वहां भी कोई बहुत अच्छी हालत नहीं मालूम होती। नहीं मालूम होगी। क्योंकि प्रेम को आप जिस भांति मौका देते हैं उसमें प्रेम एक चोरी की तरह होता है, प्रेम एक सीक्रेसी की तरह होता है। प्रेम करने वाला डरते हुए प्रेम करते हैं। घबराएं हुए प्रेम करते हैं। चोरों की तरह प्रेम करते हैं, अपराधी की तरह प्रेम करते हैं। सारा समाज उनके विरोध में है, सारे समाज की आंखें उन पर लगी हुई हैं। सारे समाज के विद्रोह में वे प्रेम करते हैं। यह प्रेम भी स्वस्थ नहीं है, क्योंकि प्रेम के लिए स्वस्थ हवा नहीं है। इसके परिणाम भी अच्छे नहीं हो सकते। प्रेम के लिए समाज को हवा पैदा करनी चाहिए। मौका पैदा करना चाहिए। अवसर पैदा करना चाहिए। प्रेम की शिक्षा दी जानी चाहिए, दीक्षा दी जानी चाहिए। प्रेम की तरफ बच्चों को विकसित किया जाना चाहिए क्योंकि वही उनके जीवन का आधार बनेगा, वही उनके पूरे जीवन का केंद्र बनेगा। उसी केंद्र से उनका जिन विकसित होगा। लेकिन उसकी कोई बात ही नहीं है, उससे हम दूर खड़े रहते हैं, आंखें बंद किए खड़े रहते हैं। न मां बच्चे से प्रेम की बात करती है, न बाप। न उन्हें कोई सिखाता है कि प्रेम हो तब तक तुम मत विवाह करना,

क्योंकि वह विवाह गलत होगा, झूठा होगा, पाप होगा, वह सारी कुरूपता की जड़ होगी और सारी मनुष्यता को पागल करने का कारण होगा।
अगर मनुष्य जाति को परमात्मा के निकट लेना है तो पहला काम परमात्मा
की बात मत करिए। मनुष्य जाति को प्रेम के निकट ले आइए। जीवन जोखिम के काम में है। न मालूम कितने खतरे हो सकते हैं। जीवन की बनी बनायी व्यवस्था में, न मालूम कितने परिवर्तन करने पड़ सकते हैं। लेकिन मत करिए परिवर्तन, यह समाज अपने ही हाथ मौत के किनारे पहुंच गया है इसलिए स्वयं मर जाएगा। यह बच नहीं सकता। प्रेम से रिक्त लोग ही युद्धों को पैदा करते हैं प्रेम से रिक्त लोग ही अपराधी बनते हैं। प्रेम से रिक्तता ही अपराध (बतपउपदंसपजल) की जड़ है, और सारी दुनिया में अपराधी फैलते चले जाते हैं।
जैसा मैंने आपसे कहा कि अगर किसी दिन जन्म विज्ञान पूरा विकसित होगा
तो हम शायद पता लगा पाए कि कृष्ण का जन्म किन स्थितियों में हुआ। किस समस्वरता (भंतउवदल) में, कृष्ण के मां बाप ने किस प्रेम के क्षण में गर्भस्थापन (बवदबमचजपवद) किया इस बच्चे का, प्रेम के किस क्षण में यह बच्चा अवतरित हुआ, तो शायद हमें दूसरी तरफ यह भी पता चल जाए कि हिटलर किस अप्रेम के क्षण में पैदा हुआ होगा। मुसोलिनी किस क्षण पैदा हुआ होगा। तैमूरलंग, चंगेज खां किस अवसार पर पैदा हुए होंगे। हो सकता है कि यह पता चले कि चंगेज खां संघर्ष, घृणा और क्रोध से भरे मां बाप से पैदा हुआ हो। जिंदगी भर वह क्रोध से भरा हुआ है। वह जो क्रोध का मालिक वेग (वतपहदंस उवउमदजनउ) है वह उसको जिंदगी भर दौड़ाए चला जा रहा है। चंगेज खां जिस गांव में गया लाखों लोगों को कटवा दिया। तैमूरलंग जिस राजधानी में जाता दस दस हजार बच्चों को गर्दनें कटवा देता है। भाले में छिदवा देता। जुलूस निकालता तो दस हजार बच्चों की गर्दनें लटकी हुई होती भालों के ऊपर, पीछे तैमूर चलता, लोग पूछते, यह तुम क्या करते हो? तो वह कहता: ताकि लोग याद रखें कि तैमूर कभी इस नगरी में आया था। इस पागल को याद रखवाने की और कोई बात याद नहीं पड़ती थी! हिटलर ने जर्मनी मग साठ लाख यहूदियों की हत्या की। पांच सौ यहूदी रोज मारता रहा। स्टैलिन ने रूस में सात लाख लोगों की हत्या की। जरूर इनके जन्म के साथ कोई गड़बड़ हो गई। जरूर ये जन्म के साथ ही पागल पैदा हुए। उन्माद (छमनतवेपे) इनके जन्म के साथ इनके खून में आया और फिर वह फैलता चला गया। और पागलों में बड़ी ताकत होती है। पागल कब्जा कर लेते हैं और पागल दौड़कर हावी हो जाते हैं¬धन पर, पद पर यश पर। और फिर सारी दुनिया को विकृत करते हैं क्योंकि वे ताकतवर होते हैं।
यह जो पागलों ने दुनिया बनायी है यह दुनिया तीसरे महायुद्ध के करीब आ गयी है। सारी दुनिया मरेगी। पहले महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या की गयी, दूसरे महायुद्ध में साढ़े सात करोड़ लोगों की हत्या की गयी। अब तीसरे में कितनी की जाएगी? मैंने सुना है¬जब आइंस्टीन मर कर भगवान के घर पहुंचा तो भगवान के घर पहुंचा तो भगवान ने उससे कहा कि मैं बहुत घबराया हुआ हूं। क्या तुम तुझे तीसरे महायुद्ध के संबंध में कुछ बताओगे? क्या होगा? उसने कहा, तीसरे महायुद्ध के बाबत कहना मुश्किल है, चौथे के संबंध में कुछ जरूर बता सकता हूं। भगवान ने कहा: तीसरे के बाबत नहीं बता सकते, चौथे के बाबत कैसे बताओगे? आइंस्टीन ने कहा, एक बात बता सकता हूं चौथे के बाबत, कि चौथा महायुद्ध कभी नहीं होगा क्योंकि तीसरे में सब आदमी समाप्त हो जाएंगे। चौथे के होने की कोई संभावना नहीं है क्योंकि यह करने वाले ही नहीं बचेंगे। तीसरे के बाबत कुछ भी कहना मुश्किल है कि ये साढ़े तीन अरब पागल आदमी क्या करेंगे? कुछ नहीं कहा जा सकता कि क्या स्थिति होगी। प्रेम से वियुक्त मनुष्यमात्र एक दुर्घटना है, मैं यही निवेदन करना चाहता हूं। वैसे मेरी बातें बड़ी अजीब लगी होंगी लगी होंगी आपको क्योंकि ऋषि मुनि इस तरह की बातें करते ही नहीं। मेरी बात बहुत अजीब लगी होगी आपको। शायद यहां आते समय आपने सोचा होगा कि मैं भजन कीर्तन का कोई नुस्खा बताऊंगा। आपने सोचा होगा कि मैं कोई माला फेरने की तरकीब बताऊंगा। आपने सोचा होगा कि मैं कोई आपको ताबीज दे दूंगा जिसको बांधकर आप परमात्मा से मिल जाएंगे, नहीं, ऐसी कोई बात मैं आपको नहीं बता सकता हूं। ऐसे बताने वाले सब बेईमान हैं, धोखेबाज हैं। समाज को उन्होंने बहुत बर्बाद किया है। समाज

की जिंदगी को समझने के लिए मनुष्य के पूरे विज्ञान को समझना जरूरी है। परिवार को, दंपति को, समाज को¬उसकी पूरी व्यवस्था को समझना जरूरी है कि कहां क्या गड़बड़ हुई है। अगर सारी दुनिया यह तय कर ले कि हम पृथ्वी को एक प्रेम का घर बनाएगे, झूठे विवाह का नहीं। वैसे प्रेम से विवाह निकले वह अलग बात है। जितनी कठिनाइयां होंगी, मुश्किल होंगी, अव्यवस्था होगी उसको सम्हालने का हम कोई उपाय खोजेंगे, उस पर विचार करेंगे लेकिन दुनिया से हम यह अप्रेम का जो जाल है उसको तोड़ देंगे और प्रेम की एक दुनिया बनाएंगे तो शायद पूरी मनुष्य जाति बच सकती है और स्वस्थ हो सकती है।
मैं यह भी कहना चाहता हूं कि अगर सार जगत में प्रेम के केंद्र पर परिवार बन जाए तो जो कल्पना हजारों वर्षों से रही है, आदमी को महामानव (ेनचमतउंद) बनाने की, वह जो नीत्से कल्पना करता है और अरविंदा कल्पना करते हैं, वह कल्पना पूरी हो सकती है। लेकिन न तो अरविंद की प्रार्थनाओं से और न नीत्से के द्वारा पैदा किए गए फैसिज्म से वह सपना पूरा हो सकता है। अगर पृथ्वी पर हम प्रेम की प्रतिष्ठा को वापस लौट लाए। अगर प्रेम जीवन में वापस लौट आए, सम्मानित हो जाए और प्रेम एक आध्यात्मिक मूल्य ले ले तो नए मनुष्य का निर्माण हो सकता है¬नयी संतति का, नयी पीढ़ियों का, नए आदमी का। और वह आदमी, वह बच्चा, वह भ्रम जिसका पहला अणु प्रेम से जन्मेगा विश्वास किया जा सकता है, आश्वासन दिया जा सकता है कि उसकी अंतिम श्वास परमात्मा में निकलेगी।
प्रेम है प्रारंभ, परमात्मा है अंत। वह अंतिम सीढ़ी है। जो प्रेम को ही नहीं पता है वह परमात्मा को तो पा ही नहीं सकता, यह असंभावना है। लेकिन जो प्रेम में दीक्षित हो जाता है और प्रेम में विकसित हो जाता है, और प्रेम के प्रकाश में चलता है और प्रेम के फूल जिसकी श्वास बन जाते हैं, और प्रेम जिसका अणु-अणु बन जाता है और जो प्रेम में बढ़ता जाता है, एक दिन वह पाता है कि प्रेम की जिस गंगा में वह चला था वह गंगा अब किनारे छोड़ रही है और सागर बन रही है। एक दिन वह पाता है, कि गंगा के किनारे मिटते जाते है और अनंत सागर आ गया सामने। छोटी सी गंगा की धारा थी गंगोत्री में, छोटी सी प्रेम की धारा होती है शुरू में। फिर वह बढ़ती है, फिर वह बड़ी होती है, फिर वह पहाड़ों और मैदानों को पार करती है। और एक वक्त आता है कि किनारे छूटने लगते हैं। जिस दिन प्रेम के किनारे छूट जाते हैं उसी दिन प्रेम परमात्मा बन जाता है। जब तक प्रेम के किनारे होते हैं तब तक वह परमात्मा नहीं होता। गंगा, नदी रहती है जब तक वह इस जमीन के किनारे से बंधी होती है फिर किनारे छूटते हैं और सागर से मिल जाती है। फिर वह सागर ही हो जाती है।
प्रेम की सरिता है और परमात्मा का सागर है। लेकिन हम प्रेम की सरिता
ही नहीं हैं हम प्रेम की नदिया ही नहीं हैं, और हम बैठे हैं हाथ जोड़े और प्रार्थनाएं कर रहे हैं कि हमको भगवान चाहिए! जो सरिता नहीं है वह सागर को कैसे पाएगा? सारी मनुष्य जाति के लिए पूरा आंदोलन चाहिए। पूरी मनुष्य जाति के आमूल परिवर्तन की जरूरत है। पूरा परिवार बदलने की जरूरत है। बहुत कुरूप है हमारा परिवार। वह बहुत सुंदर हो सकता है लेकिन केवल प्रेम के केंद्र पर ही। पूरे समाज को बदलने की जरूरत है और तभी एक धार्मिक मनुष्यता पैदा हो सकती है।
प्रेम प्रथम, परमात्मा अंतिम। क्यों प्रेम परमात्मा पर पहुंच जाता है? क्योंकि प्रेम है बीज और परमात्मा है वृक्ष। प्रेम का बीज ही फिर फूटता है और वृक्ष बन जाता है। सारी दुनिया की स्त्रियों से मेरा कहने का यह मन होता है, और खासकर स्त्रियों से, क्योंकि पुरुष के लिए प्रेम और बहुत सी जीवन की दिशाओं में एक दिशा है जब कि स्त्री के लिए प्रेम अकेली दिशा है। पुरुष के लिए प्रेम और बहुत से आयामों में एक आयाम है। उसके और के लिए प्रेम और बहुत से जीवन आयामों में एक आयाम है उसके और भी आयाम हैं व्यक्तित्व के, लेकिन स्त्री का एक ही आयाम, एक ही दिशा है और वह है प्रेम। स्त्री पूरी प्रेम है। पुरुष प्रेम भी है और दूसरी चीज भी है। अगर स्त्री का प्रेम विकसित हो और वह समझे प्रेम की कीमिया, प्रेम की रसायन तो वह बच्चों को दीक्षा दे सकती है प्रेम की। और गति दे सकती हैं प्रेम के आकाश में उठने की। उनके पंखों को वह मजबूत कर सकती है। लेकिन अभी तो हम काट देते

हैं पंख। विवाह की जमीन पर सरको! प्रेम के आकाश में मत उड़ना! जरूर आकाश में उड़ना जोखिम होता है और जमीन पर चलना आसान है। लेकिन जो जोखिम नहीं उठाते हैं वे जमीन पर रेंगने वाले कीड़े हो जाते हैं और जो जोखिम उठाते हैं वे दूर अनंत आकाश में उड़ने वाले बाज पक्षी सिद्ध होते हैं।
आदमी रेंगता हुआ कीड़ा हो गया है क्योंकि हम सिखा रहे हैं, कोई भी जोखिम (त्तपो) न उठाना, कोई खतरा (क्ंदहमत) मत उठाना! अपने घर का दरवाजा बंद करो और जमीन पर सरको! आकाश मग मत उड़ना! जबकि होना यह चाहिए कि हम प्रेम की जोखिम सिखाए, प्रेम का खतरा सिखाए, प्रेम का अभय सिखाए और प्रेम के आकाश में उड़ने के लिए उनके पंखों को मजबूत करें और चारों तरफ जहां भी प्रेम पर हमला होता हो उसके खिलाफ खड़े हो जाए, प्रेम को मजबूत करें, ताकत दें। प्रेम के जितने दुश्मन खड़े हैं, दुनिया में उनमें नीतिशास्त्री भी हैं, हालांकि थोथे हैं वे नीतिशास्त्री, क्योंकि प्रेम के विरोध में जो हो वह क्या खाक नीतिशास्त्री होगा! साधु संन्यासी खड़े हैं प्रेम के विरोध में, क्योंकि वे कहते हैं कि सब पाप है, यह सब बंधन है, इसको छोड़ो और परमात्मा की तरह चलो। हद हो गई। जो आदमी कहता है कि प्रेम को छोड़कर परमात्मा की तरफ चलो, वह परमात्मा का शत्रु है, क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त तो परमात्मा की तरफ जाने का कोई रास्ता ही नहीं है। बड़े बूढ़े भी खड़े हैं प्रेम के विपरीत क्योंकि उनका अनुभव कहता है कि प्रेम खतरा है। लेकिन अनुभव लोगों से जरा सावधान रहना क्योंकि जिंदगी में कभी कोई नया रास्ता वे नहीं बनने देते। वे कहते हैं कि पुराने रास्ते का हमें अनुभव है, हम पुराने रास्ते पर चले हैं, उसी पर सबको चलना चाहिए। लेकिन जिंदगी को रोज नया रास्ता चाहिए। जिंदगी रेल की पटरियों पर दौड़ती हुई रेलगाड़ी नहीं है कि बनी पटरियां पर दौड़ती रहे। और अगर दौड़ेगी तो एक मशीन हो जाएगी। जिंदगी तो एक सरिता है जो रोज एक नया रास्ता बना लेती है¬पहाड़ों में, मैदानों में, जंगलों में। अनूठे रास्ते से निकली है, अनजान जगत में प्रवेश करती है और सागर तक पहुंच जाती है।
नारियों के सामने आज एक ही काम है। वह काम यह नहीं है कि अनाथ बच्चों
को पढ़ा रहीं है बैठकर। तुम्हारे बच्चे भी तो सब अनाथ हैं। नाम के लिए वे तुम्हारे बच्चे हैं। न उनकी मां है, न उनका बाप। समाज सेवक स्त्रियां सोचती हैं कि अनाथ बच्चों का अनाथालय खो दिया तो बहुत बड़ा काम कर दिया। उनको पता नहीं कि उनके बच्चे भी अनाथ ही हैं। तुम दूसरों के अनाथ बच्चे को शिक्षा देने जा रही हो तो पागल हो। तुम्हारे बच्चे खुद अनाथ (वतचींदस) हैं। कोई नहीं हैं उनका, न तुम हो, न तुम्हारे पति। न उनकी मां है और न उनको कोई है, क्योंकि वह प्रेम ही नहीं है जो उनको सनाथ बनाता। सोचते हैं हम आदिवासी बच्चों को जाकर शिक्षा दे दें। वहां तुम जाकर आदिवासी बच्चों को शिक्षा दो और यहां तुम्हारे बच्चे धीरे-धीरे आदिवासी हुए चले जा रहे हैं! ये जो बीटल हैं, बीटनिक हैं, फलां हैं ढिकां हैं, फिर से आदमी के आदिवासी होने की शकलें हैं। तुम सोचते हो, स्त्रियां सोचती हैं कि जाए और सेवा करें। जिस समाज में प्रेम नहीं है उस समाज में सेवा कैसे हो सकती है? सेवा तो प्रेम की सुगंध है।
बस आज तो यही कहना चाहूंगा। आज तो सिर्फ एक धक्का आपको दे देना चाहूंगा ताकि आपके भीतर चिंतन शुरू हो जाए। हो सकता है मेरी बातें आपको बुरी लगें। लगें तो बहुत अच्छा है। हो सकता है मेरी बातों से आपको चोट लगे, तिलमिलाहट पैदा हो। भगवान करें जितनी ज्यादा हो जाए उतना अच्छा, क्योंकि उससे कुछ सोच विचार पैदा होगा। हो सकता है मेरी सब बातें गलत हों इसलिए मेरी बात मान लेने की कोई भी जरूरत नहीं है, लेकिन मैंने जो कहा है उस पर आप सोचना। मैं फिर दोहरा देता हूं उन दो चार सूत्रों को और अपनी बात पूरी किए देता हूं।
आज तक का मनुष्य का समाज प्रेम के केंद्र पर निर्मित नहीं है इसी लिए विक्षिप्त है, पागलपन है, युद्ध हैं, आत्माएं हैं, अपराध हैं। प्रेम की जगह आदमी के एक झूठा स्थानापन्न () विवाद ईजाद कर लिया है। विवाह के कारण वेश्याएं हैं, गुंडे हैं। विवाह के कारण शराब है, विवाह के कारण बेहोशिया है। विवाह के कारण भागे हुए संन्यासी हैं। विवाह के कारण मंदिरों में भजन

करने वाले झूठे लोग हैं। जब तक विवाह है तब तक यह रहेगा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विवाह मिट जाए, मैं यह कह रहा हूं कि विवाह प्रेम से निकले। विवाह से प्रेम नहीं निकलता है, प्रेम से विवाह निकले तो शुभ है। विवाह से यदि प्रेम की निकालने की कोशिश भी की जाए तो वह प्रेम झूठा होगा, क्योंकि जबरदस्ती कभी भी कोई प्रेम नहीं निकाला जा सकता है। प्रेम तो निकलता है या नहीं निकलता है। जबरदस्ती नहीं निकाला जा सकता है।
तीसरी बात मैंने यह कहीं कि जो मां बाप प्रेम से भरे हुए नहीं हैं उनके बच्चे जन्म से ही विकृत (ढमतअमतजमक) एग्नार्मल, रुग्ण और बीमार पैदा होंगे। मैंने यह भी कहा कि जो मां बाप, जो पति पत्नी, जो प्रेम युगल प्रेम से संभोग में लीन नहीं होते हैं वे केवल उन बच्चों को पैदा करेंगे जो शरीरवादी होंगे, भौतिकवादी होंगे जिनकी जीवन की आंख पदार्थ से ऊपर कभी नहीं उठेगी, जो परमात्मा को देखने के लिए अंधे पैदा होंगे। आध्यात्मिक रूप से अंधे बच्चे हम पैदा कर रहे हैं।
मैंने चौथी बात आपसे यह कही कि मां बाप अगर एक दूसरे को प्रेम करते
हैं तो ही वे बच्चों की मां बनेंगी, बाप बनेंगे क्योंकि बच्चे उनकी ही प्रतिध्वनियां हैं, वे आया हुआ नया बसंत हैं, वे फिर से जीवन के दरख्त पर लगी हुई कोंपलें हैं। लेकिन जिसने पुराने बसंत का ही प्रेम नहीं किया वह नए बसंत को कैसे प्रेम करेगा?
और अंतिम बात मैंने यह कि प्रेम शुरुआत है और परमात्मा शिखर। प्रेम में जीवन शुरू हो तो परमात्मा में पूर्ण होता है। प्रेम बीज बने तो परमात्मा अंतिम वृक्ष की छाया बनता है। प्रेम गंगोत्री हो तो परमात्मा का सागर उपलब्ध होता है।
जिसके भी मन की कामना हो कि परमात्मा तक जाए वह अपने जीवन को प्रेम के गीत से भर ले। और जिसकी भी आकांक्षा हो कि पूरी मनुष्यता परमात्मा के जीवन से भर जाए, वह मनुष्यता को प्रेम की तरफ ले जाने के मार्ग पर जितनी बाधाएं हों उनको तोड़े, मिटाए और प्रेम को उन्मुक्त आकाश दे ताकि एक दिन नए मनुष्य का जन्म हो सके।
पुराना मनुष्य रुग्ण था, कुरूप था, अशुभ था। पुराने मनुष्य ने अपने आत्मघात का इंतजाम कर लिया है। वह आत्महत्या कर रहा है। सारे जगत में वह एक साथ आत्मघात कर लेगा। जागतिक आत्मघात। (न्नदपअमतेंस एनपबपकम) का उसने उपाय कर लिया है। लेकिन अगर मनुष्य को बचाना है तो प्रेम की वर्षा, प्रेम की भूमि और प्रेम के आकाश को निर्मित कर लेना जरूरी है।